

१२५२५१०५११
H. N. 229

सामाजिकशास्त्र की रूपरेखा

तृतीय भाग

भारतीय नागरिकशास्त्र

गवर्नमेण्ट संस्कृतकालेज, बनारस की
प्रथमापरीक्षा के लिए

लेखक—

श्री मोहनराम यादव एम. ए., 'साहित्यरत्न'

प्राध्यापक, डी० ए० वी० कालेज, बनारस

W:5
152J5

प्रकाशक:—

मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स,

संस्कृत बुक शॉप,

कचौड़ीगली, बनारस-१

मूल्य ॥३॥ मूल्य नैद वेदांग विद्यालय
ग्रन्थालय

W:5
15235

0900

पाद (हीनरात्र)
नारदीय नाग रिक शालि

5500

कृपया यह ग्रन्थ भीचे निर्देशित तिथि पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

This image shows a blank, aged, cream-colored page, likely an endpaper or flyleaf from an old book. The page is ruled with horizontal lines and is divided into three vertical columns by two red lines. The paper has a slightly textured appearance with some minor staining and small holes, possibly from insects or age. There is no text or other markings on the page.

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय, वाराणसी ।

W:5
152J5

0900

पाद (मोक्षराम)
भारतीय नाग टिप्पणी

सामाजिकशास्त्र की रूपरेखा

तृतीय भाग

भारतीय नागरिकशास्त्र

(गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, बनारस की प्रथमा परीक्षा के लिए)

लेखक—

श्री मोहन राम यादव, एम० ए०, 'साहित्यरत्न'

प्राध्यापक, डी० ए० बी० कालेज, बनारस

प्रकाशक—

मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स,

संस्कृत बुक डिपो,

कचौड़ीगली, बनारस - १

प्रथम संस्करण]

१९५५ ई०

[॥ =]

प्रकाशकः—
 बी० एन० यादव प्रोप्राइटर
 मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स,
 संस्कृत बुकडिपो,
 कचौड़ीगली, बनारस-१ ।

W: 5
 15255



❀ मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय ❀
 वा १ ग सी ।
 आगत क्रमांक..... 0700
 दिनांक..... 6/6

मुद्रकः—
 मास्टर प्रिण्टिङ्ग वर्क्स,
 बुलानगला, काशी ।

प्राक्कथन

भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात् इस बात की बड़ी आवश्यकता प्रतीत हुई कि यहाँ के लोगों में उत्तम नागरिकता के भाव भरे जाय । इसी दृष्टिकोण से नागरिकशास्त्र विषय निम्न कक्षाओं में भी पढ़ाया जाने लगा । यद्यपि ब्रिटिशकाल में इसकी शिक्षा दी जाती थी पर वह केवल ऊँची कक्षाओं में ही इस उद्देश्य से प्रचारित थी कि छात्र शासन-प्रणाली को समझें । इस प्रयत्न की आवश्यकता बनी हुई थी कि छात्रों को शासन प्रणाली के ज्ञान के साथ आदर्श नागरिक बनने की प्रेरणा भी प्राप्त हो । हर्ष का विषय है कि इस ओर सरकार का ध्यान गया है । इधर पाठ्यक्रम में इस विषय को रख कर छात्रों में नागरिकता के बीज बोये जा रहे हैं । इस का उत्तम परिणाम भी दृष्टिगोचर हो रहा है । यद्यपि यह विषय शासन एवं राजनीति से अधिक सम्बद्ध है फिर भी दैनिक जीवन में इसका बड़ा महत्व है । प्रस्तुत पुस्तक में इसी विषय को सरलता से समझाने का प्रयत्न किया गया है । छात्रों के कोमल मस्तिष्क पर अनावश्यक भार न पड़े इस लिए विषय को रुचिकर ढंग से लिखा गया है । इस के लिखने में हमने अनेक विद्वानों की कृतियों से लाभ उठाया है । उनके प्रति आभार प्रकट करना हमारा कर्तव्य हो जाता है । यदि छात्रों को इस पुस्तक से लाभ पहुँचा तो हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे ।

इस पुस्तक में यदि कुछ भूलें हों तो इस का उत्तरदायित्व मुझ पर है । यदि उन की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया गया तो हम आभारी होंगे और भविष्य में उन्हें सुधारने का प्रयत्न करेंगे ।

काशी
गुरु पूर्णिमा, सं० २०१२ }

गोविन्दराज यादव

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
[अध्याय १]		[अध्याय ३]	
नागरिक	१	स्थानीय शासन	२१
स्वाभाविक नागरिक	२	पञ्चायत-राज्य	२२
कृत्रिम नागरिक	२	ग्राम-सभा का संगठन	२२
स्वाभाविक नागरिकता	२	सदस्यता की अवधि	२३
कृत्रिम नागरिकता	३	सभापति एवं उपसभापति	२३
नागरिकता से वञ्चित होना	३	अधिवेशन	२३
नागरिकता	४	ग्राम पंचायत	२३
नागरिक शास्त्र	५	निर्वाचन	२४
नागरिक शास्त्र का क्षेत्र	५	पञ्चायत के अधिकार एवं कर्तव्य	२४
नागरिक शास्त्र के नियम	७	पञ्चायत के अनिवार्य कार्य	२४
नागरिक शास्त्र एवं अन्य शास्त्रों	७	पञ्चायत के ऐच्छिक कार्य	२५
से सम्बन्ध	७	आय के साधन	२५
[अध्याय २]		पञ्चायती अदालतों का संगठन	२६
नागरिकता की तत्त्व	९	पञ्चायती अदालतों के अधिकार	२६
अधिकार और कर्तव्य	१०	जिलाबोर्ड	२७
अपने प्रति कर्तव्य	१२	संगठन	२७
परिवार में मनुष्य के अधिकार	१२	चुनाव	२७
एवं कर्तव्य	१२	सभापति	२८
नागरिकों के अधिकार और कर्तव्य	१४	बोर्ड के प्रमुख अधिकारी	२८
राज्य तथा नागरिकों के अधिकार	१६	एवं कर्मचारी	२८
नागरिकों के कर्तव्य	२०	जिलाबोर्ड के कार्य	२९
		आय के स्रोत	२९

विषय	पृष्ठ
सरकारी नियंत्रण	३०
नगर-पालिका	३०
संघटन	३०
म्युनिस्पल बोर्ड के कार्य	३१
म्युनिस्पल बोर्ड की कार्य-पद्धति	३२
आय. के साधन	३२
सरकारी नियंत्रण	३२
नगर निगम	३२
छावनी पालिका	३३
इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट	३३
पोर्ट ट्रस्ट	३३
उपसंहार	३४

[अध्याय ४]

जिले का शासन	३४
शासन सम्बन्धी विभाग	३५
जिले के अधिकारी एवं उनके कर्तव्य	३५
व्यवसाय	३८
पुलिस	३८
शिक्षा विभाग	३९
कृषि विभाग	४०
सिंचाई विभाग	४०
सहकारी विभाग	४१
आरोग्य एवं जन-स्वास्थ्य	४२
लोक-सेवा संस्थाएँ	४३
ग्राम सुधार-विभाग	४३
डाकखाना तथा तारघर	४३

विषय	पृष्ठ
लोक-सेवा के अन्य सरकारी कार्य	४३
कांग्रेस	४४
आर्य-समाज	४४
हिन्दू-सभा	४५
सेवा-समिति	४५
व्यावसायिक संस्थाएँ	४५
वैक	४६

[अध्याय ५]

प्रादेशिक तथा केन्द्रीय शासन का सामान्य परिचय	४६
राज्यों का शासन प्रबन्ध	४६
राज्यपाल	४७
राज्यपाल के कर्तव्य और अधिकार	४८
राज्य का मन्त्रिमण्डल	५०
महत्त्व	५०
मन्त्रिमण्डल का संघटन	५०
मन्त्रिमण्डल के कार्य	५१
अधिकारी	५१
मन्त्रिमण्डल की कार्य प्रणाली	५२
मन्त्रिमण्डल का उत्तरदायित्व	५२
महाधिवक्ता	५२
राज्य की धारा-सभा	५३
लेजिस्लेटिव कौन्सिल	५३
सदस्यों की योग्यता	५४
सभापति-उपसभापति	५४
विधान-सभा और उसका संघटन	५४

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
ग्रान्तीय धारा-सभा के अधिकार		धारा-सभा के सदस्यों की योग्यताएँ	६५
एवं कर्तव्य	५६	संसद की कार्य-प्रणाली	६६
धारा-सभा के नियम बनाने		संव-न्यायालय	६६
की विधि	५६	न्यायाधीश की नियुक्ति	६७
ग्रान्त की न्याय-व्यवस्था	५७	संव न्यायालय के अधिकार एवं	
उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की		कर्तव्य	६७
नियुक्ति	५७		
उक्त न्यायालय के न्यायाधीशों के		[अध्याय ६]	
लिए योग्यता	५८	नागरिकों के अधिकार	६८
उच्च न्यायालय के अधीन न्यायालय	५८	नागरिकों के कर्तव्य	७०
उच्च न्यायालय के अधिकार एवं			
कर्तव्य	५९	[अध्याय ७]	
केन्द्रीय शासन	५९	आधुनिक भारतीय जीवन की	
नये विधान के अनुसार केन्द्रीय		समस्याएँ	७१
शासन	६०	सामाजिक सुधार की समस्या	७२
राष्ट्रपति का निर्वाचन	६०	अस्पृश्यता की समस्या	७४
राष्ट्रपति का कार्य-काल	६१	आधुनिक भारत में स्त्रियों का स्थान	७६
उप राष्ट्रपति	६१	भारत में निर्धनता की समस्या	७९
राष्ट्रपति के अधिकार और कर्तव्य	६१	ग्रामीण उद्योग-धन्धों का	
केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल	६२	पुनरुज्जीवन	८१
केन्द्रीय धारा-सभा	६४	[अध्याय ८]	
राज्य परिषद्	६४	विद्यार्थियों का ग्राम तथा नगर निवासियों	
केन्द्रीय लोक-सभा	६५	के प्रति कर्तव्य	८३
		लोकसेवा की भावना	८४

सामाजिकशास्त्र की रूपरेखा

द्वितीय भाग

भारतीय नागरिकशास्त्र

अध्याय १

परिचय—

नागरिक—

शब्द व्युत्पत्ति के अनुसार नागरिक उस व्यक्ति को कहते हैं जो नगर का निवासी हो। पर आजकल इसका अर्थ व्यापक हो गया है। अब नागरिक से तात्पर्य उस व्यक्ति से है जो किसी राज्य का निवासी हो और जिसे राज्य की व्यवस्था में भाग लेने का राजनीतिक अधिकार प्राप्त हो। वह व्यक्ति चाहे नगर निवासी हो अथवा ग्राम निवासी।

पाणिनि ने नागरिक शब्द उस व्यक्ति के लिए प्रयुक्त किया है जो नगर में निवास करता है। और जो नगर के वातावरण में पल कर, शिक्षा लेकर, एक विशेष प्रकार के कला कौशल तथा रहन-सहन में कुशल हो गया हो।

वात्स्यायन के अनुसार नगर या गांव का प्रत्येक व्यक्ति अपने देश का नागरिक है। पर वर्तमान समय में नागरिक के लिए यह आवश्यक है कि उसे राज्य की ओर से राजनीतिक अधिकार प्राप्त हो। किसी देश में रहने पर भी राजनीतिक अधिकार से वञ्चित व्यक्ति उस देश का नागरिक नहीं कहा जा सकता है।

किसी देश में जन्म लेने वाले व्यक्ति वहाँ के नागरिक मान लिये जाते हैं किन्तु विदेश में जन्म ग्रहण करने वाले जब किसी देश में जाकर निवास करते हैं

और वहाँ के निश्चित नियमों को पूरा करते हैं तो उन्हें भी नागरिकता के अधिकार मिल जाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नागरिक दो प्रकार के होते हैं—

(१) स्वाभाविक नागरिक—किसी देश के नागरिक की सन्तान होने से नागरिक मान लिये जाते हैं। उन्हें हम स्वाभाविक नागरिक कहते हैं।

(२) कृत्रिम नागरिक—वे व्यक्ति हैं जो किसी देश में निर्धारित नियमों का पालन करने से विदेशी होने पर भी नागरिकता के अधिकार प्राप्त कर लेते हैं।

उदाहरण के लिए हम भारतीय नागरिक को ले सकते हैं। जो व्यक्ति भारत की सीमा में उत्पन्न हुआ है वह भारतीय नागरिक माना जायगा। वह चाहे जिस जाति, सम्प्रदाय अथवा धर्म का मानने वाला क्यों न हो। ऐसा नागरिक स्वाभाविक नागरिक कहा जायगा।

स्वाभाविक नागरिकता—

प्रायः किसी देश में उत्पन्न होते ही प्राप्त हो जाती है। सभी स्वतन्त्र देशों में प्रायः ऐसा ही नियम है कि मूल नागरिक की सन्तान वयस्क होते ही नागरिकता के सभी अधिकार प्राप्त कर लेती है। कुछ देश ऐसे भी हैं जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को ये अधिकार प्राप्त नहीं होते। उदाहरण के लिए कुछ देश ऐसे भी मिलेंगे जहाँ वयस्क होने पर भी महिलाओं को मत-दान का अधिकार नहीं दिया जाता। अन्य देशों की कौन कहे हमारे देश में भी ब्रिटिशकालीन विधान के अनुसार वयस्क होने के साथ ही धन, शिक्षा आदि की योग्यता के विचार से ही मतदान का अधिकार दिया जाता था। स्वतंत्र भारत के विधान में ऐसी योग्यता का प्रतिबन्ध नहीं है। अब तो सभी स्त्री-पुरुष को वयस्क होने पर यह अधिकार प्राप्त हो जाता है। कुछ देशों में निश्चित नियमों के पालन करने पर भी कुछ विशेष व्यक्ति राजनीतिक अधिकार से वंचित रहते हैं। अफ्रीका में अश्वेतों के साथ ऐसा ही व्यवहार हो रहा है। इसके अतिरिक्त किसी भी देश में विक्षिप्त (पागल), दिवालिये, राजद्रोही, बड़े अपराधों के कारण दण्डित व्यक्तियों को राजनीतिक अधिकार नहीं दिये जाते।

कृत्रिम नागरिकता—

प्रत्येक देश के कुछ निवासी विदेशों में जाकर व्यापार, नौकरी, उद्योग धन्धा, राजनीतिक व्यवहार या धर्म प्रचार आदि कार्यों को करते हैं। ऐसे व्यक्ति दूसरे देशों में बस जाते हैं। ऐसे लोगों को अपना कार्य सुचारुरूप से चलाने तथा जीवन की अनिवार्य शान्ति एवं रक्षा प्राप्त करने के लिये उन देशों की नागरिकता प्राप्त करना अत्यन्तावश्यक है। इस प्रकार की नागरिकता प्राप्त करने के लिए उन्हें निश्चित अवधि तक वहाँ बसना चाहिये। वहाँ की नागरिक होने की प्रतिज्ञा करनी चाहिये तथा देश के प्रति भक्ति रखने की शपथ लेनी चाहिये। कहीं कहीं पर उस देश की राष्ट्रभाषा का ज्ञान प्राप्त करना, जीविका उपार्जन की शक्ति एवम् अचल सम्पत्ति, भूमि आदि का स्वामी होना आवश्यक समझा जाता है।

इस प्रकार के कृत्रिम नागरिकों के अतिरिक्त अनेक विदेशी भी प्रायः सभी देशों में निवास करते हैं। वे जिस देश में रहते हैं वहाँ के राजकीय नियमों का पालन करते हैं एवं निश्चित कर भी देते हैं। ऐसे व्यक्तियों को राजनीतिक अधिकार तो नहीं प्राप्त होते पर वे नागरिक के अन्य अधिकारों का उपयोग करते हैं। इन अधिकारों के उपभोग के साथ उन्हें नागरिकों के कर्तव्य का पालन भी करना पड़ता है।

उन्हें मतदान या प्रतिनिधियों के चुनाव का अधिकार नहीं रहता। शान्ति-काल में तो वे उस देश के नागरिक की ही भाँति स्वतन्त्र रहते हैं पर यदि वे शत्रु देश के नागरिक हुए तो युद्धकाल में उन्हें बन्दी बना लिया जाता है। उन्हें किसी स्थान पर बन्दी कर दिया जाता है जिससे वे अपने देश से मिलकर विश्वासघात या षड्यन्त्र न करें। उनके देश के राजदूत ऐसे व्यक्तियों के हितों की रक्षा करते हैं।

नागरिकता से वञ्चित होना—

ऐसा न समझना चाहिये कि एक बार नागरिकता प्राप्त कर लेने या स्वाभाविक नागरिक होने के पश्चात् नागरिकता का अधिकार सर्वदा के लिए

अटके या अधिकृत हो गया । कुछ परिस्थितियों में नागरिकता छीनी भी जा सकती है । ऐसी स्थिति के लिए निम्नलिखित परिस्थितियाँ निश्चित हैं ।

- (१) निरुद्ध एवं अनुचित समझे जाने वाले अपराधों के कारण दण्ड पाये हुए व्यक्ति नागरिकता से वञ्चित कर दिये जाते हैं ।
- (२) दूसरे देश के नागरिक बन जाने पर मूल देश की नागरिकता समाप्त हो जाती है ।
- (३) कभी कभी एक देश की स्त्री यदि दूसरे देश के पुरुष से विवाह कर लेती है तो उस स्त्री की अपनी जन्मभूमि की नागरिकता समाप्त कर दी जाती है ।
- (४) किसी किसी देश में निश्चित काल तक प्रवासी रहने पर जन्मभूमि की नागरिकता का अधिकार नहीं रह जाता ।
- (५) कुछ देशों में विदेशी सरकार की नौकरी करने वाले व्यक्ति भी अपनी जन्मभूमि की नागरिकता को खो बैठते हैं ।

नागरिकता —

प्राचीन काल में तो 'नागरिकता' का अर्थ केवल 'कर्तव्य' से लिया जाता था । राजतन्त्रशासन में प्रजा राज्य के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करती थी । हिन्दू राजाओं का कर्तव्य प्रजा के प्रति निश्चित था । शास्त्रों के अनुसार वह प्रजा के हित के कार्य करता था । राजा के निरंकुश होने पर प्रजा के प्रतिनिधि उसे सुधारने का प्रयत्न करते थे । राजा धार्मिक प्रवृत्ति के होते थे । इसलिये ऐसी स्थिति बहुत कम उत्पन्न होती थी । पर मुस्लिमकाल में शासक स्वेच्छाचारी होते थे । ब्रिटिशकाल में भी नागरिकता का शुद्ध रूप भारत में न था । यूरोप में तो राजा को दैवी-अधिकार युक्त मानते थे । उसकी इच्छा को ही राजनियम माना जाता था पर उसका विरोध हुआ । अब तो नागरिकता में अधिकार तथा कर्तव्य दोनों का समन्वय है । यदि हमें राज्य से सुरक्षा, शिक्षा, उद्योगधन्यों को प्रोत्साहित करने का अधिकार प्राप्त करते हैं तो राज्य में भक्ति (निष्ठा) रखना उसके कार्यों में सहयोग देना हमारा कर्तव्य है । यदि शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है तो हमारा कर्तव्य भी है कि हम शिक्षित बन कर राज्य के

कार्यों को सुचारु रूप से चलाने तथा देशोन्नति में योग देकर शिक्षा को स्वार्थक बनाने का कर्तव्य करें। प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि प्राप्त अधिकारों द्वारा अपनी ही उन्नति करके सन्तुष्ट न रहे वरन् समाज की उन्नति में ही अपनी उन्नति माने। व्यक्तिगत हितों के समानान्तर ही सामूहिक हितों का भी ध्यान रखे।

नागरिकशास्त्र—

नागरिकता से सम्बन्ध रखने वाले शास्त्र को हम नागरिकशास्त्र की संज्ञा देते हैं। यह शब्द अंग्रेजी के *Civics* का रूपान्तर है। *Civics* शब्द की उत्पत्ति *Civitas* नामक लैटिन शब्द से मानी जाती है। *Civitas* का अर्थ है नगर या राज्य। प्राचीन यूनान तथा इटली देश में प्रत्येक नगर एक राज्य माना जाता था। वह शिक्षा सभ्यता व्यापार का केन्द्र था। उन देशों के विद्वानों ने उन राज्यों की प्रजा के राजनीतिक सामाजिक एवं व्यावसायिक अवस्थाओं का अध्ययन किया। इस अध्ययन के फलस्वरूप उन्होंने राज्य के लोगों के अधिकारों एवं कर्तव्यों का विश्लेषण करके अनेक नियम बनाये। इन नियमों का समूह ही 'नागरिकशास्त्र' कहलाता है। नागरिकशास्त्र नाम पड़ने का कारण यह है कि इसका सम्बन्ध नगर से है। पर आज उतने छोटे-छोटे राज्य नहीं रह गये। अब तो एक देश में एक राज्य होता है। इस लिए नागरिकशास्त्र का सम्बन्ध अब पूरे राज्य अथवा पूरे राष्ट्र से हो गया है। यहाँ तक नहीं बल्कि आज तो सारे विश्व को एक राष्ट्र मानने का आन्दोलन चल पड़ा है। वैज्ञानिक आविष्कारों ने सारे संसार को इस प्रकार सम्बन्धित कर दिया है कि किसी राष्ट्र की घटना सारे विश्व को प्रभावित कर रही है। ऐसे समय में नागरिकशास्त्र का सम्बन्ध यदि सारे विश्व से माना जाय तो इसमें आश्चर्य ही क्या है।

सारांश यह है कि नागरिकशास्त्र में मनुष्य वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय स्त्री नहीं वरन् अन्तःराष्ट्रीय जीवन को सुखमय एवं समृद्धिशाली बनाने के नियमों का अध्ययन किया जाता है।

नागरिकशास्त्र का क्षेत्र तथा अन्य शास्त्रों से उसका सम्बन्ध—

अत्यन्त प्राचीनकाल में नागरिकशास्त्र का सम्बन्ध केवल छोटे-छोटे राज्यों

की शासन व्यवस्था, नागरिकों के राजनीतिक अधिकार तथा कर्तव्य, राजनियमों के निर्माण तथा न्याय-व्यवस्था तक ही था किन्तु धीरे-धीरे राज्य के विस्तार के साथ साथ इस शास्त्र में पूरे राष्ट्र के राजनीतिक पहलुओं पर विचार किया जाने लगा। ज्यों-ज्यों मनुष्य का सामाजिक विकास होता गया त्यों-त्यों उसे सर्वतो-मुखी ज्ञान की आवश्यकता पड़ने लगी। एक नागरिक के लिए केवल राजनीतिक ही नहीं अपितु सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक समस्याओं पर विचार करना आवश्यक हो गया इस प्रकार नागरिकशास्त्र में इन सभी विषयों का समावेश होता गया। मनुष्य ने वर्तमानकाल की समस्याओं पर विचार करने के साथ ही साथ भूतकाल की अवस्था तथा नागरिकता के आधार का अध्ययन किया तथा यह भी सोचना प्रारम्भ किया कि भविष्य में उसके नागरिक जीवन का स्वरूप क्या होगा। इस प्रकार नागरिकशास्त्र का सम्बन्ध जहाँ एक ओर भूतकाल से जुड़ गया वहाँ भविष्यकाल भी उसके विचारक्षेत्र के भीतर आ गया।

नागरिकशास्त्र में मनुष्य जीवन के संगठन तथा विकास की प्रायः सभी समस्याओं पर विचार किया जाता है। इसमें मनुष्य जीवन की सामाजिक उन्नति, व्यक्ति-समाज का सम्बन्ध, राज्य की शान्ति-व्यवस्था, विश्वशान्ति एवं शासनप्रणाली, स्वास्थ्य, शिक्षा, चिकित्सा, धार्मिक शैक्षणिक, व्यावसायिक, ऐतिहासिक तथा भौगोलिक जीवन राजनीति सम्बन्धी सिद्धान्तों का विकास तथा अन्ताराष्ट्रीय सम्बन्ध आदि सभी का समावेश हो गया है।

यह सम्भव है कि हम किसी समस्या विशेष को अधिक महत्त्व दें पर उक्त सभी समस्याओं पर हमें विचार करना ही पड़ेगा।

हम नागरिकशास्त्र के केवल सिद्धान्तरूप का ही अध्ययन नहीं करते वरन् उसके प्रयोगात्मकरूप को भी उतना ही महत्त्व देते हैं अतः यह केवल विज्ञान ही नहीं वरन् कला भी है।

संक्षिप्तरूप से हम मानव जीवन सम्बन्ध रखनेवाली भूत, वर्तमान, भविष्य-काल की स्थानीय, राष्ट्रीय एवं अन्ताराष्ट्रीय सभी समस्याओं पर इस शास्त्र में विचार करते हैं।

पर यहाँ हम इतने विस्तार से आपको नागरिकशास्त्र का स्वरूप नहीं

बतलायेंगे। हमारा क्षेत्र केवल अपने राष्ट्र के राजनीतिक कर्तव्य अधिकार, शासन-प्रणाली स्वास्थ्य तथा सामाजिक समस्याओं पर विचार करना है।

नागरिक शास्त्र के नियम—

किसी विषय के अनुशीलन, विश्लेषण तथा अनुभवसिद्ध ज्ञान को क्रमबद्ध करके ही हम उसे शास्त्र कहते हैं। प्रत्येक शास्त्र की भाँति नागरिकशास्त्र के भी नियम उक्त प्रयोगों द्वारा निर्धारित किये गये हैं। मानवजीवन को सुखमय बनाने के लिए ऐसे अनेक नियम हैं। ये नियम सामाजिक शास्त्र के नियम हैं। वैज्ञानिक नियमों की भाँति इसके नियम अटल नहीं होते। विज्ञान का विद्यार्थी तो निश्चित परिमाण में आक्सीजन तथा हाईड्रोजन लेकर निश्चय पूर्वक कह सकता है कि इनके सम्मिश्रण से 'जल' प्रस्तुत होगा। पर नागरिकशास्त्र का विद्यार्थी केवल यह कह सकता है कि यदि परिस्थिति ऐसी है तो असुख परिणाम हो सकता है।

नागरिकशास्त्र एवं अन्य शास्त्रों का सम्बन्ध—

- (१) समाजशास्त्र और नागरिकशास्त्र—समाजशास्त्र साधारणतः समाज के सभी अङ्गों एवं समस्याओं पर प्रकाश डालता है। जैसे समाज का संगठन ढाँचा, स्थिति, परिवर्तन आदि; पर नागरिक शास्त्र में हम केवल समाज के उसी अङ्ग का अध्ययन करते हैं जो नागरिक जीवन से सम्बन्धित है। अतः यह समाजशास्त्र का एक अङ्ग कहा जा सकता है।
- (२) नैतिकता और नागरिकशास्त्र—नैतिकता में मनुष्य को आदर्श चरित्र और कार्यप्रणाली की शिक्षा दी जाती है। इसका उद्देश्य मानव जीवन को अधिकाधिक सुखी एवं आनन्दमय बनाना है। नागरिकशास्त्र का उद्देश्य भी मानव जीवन को सुखी एवं कल्याण मय बनाना है। यह तभी सम्भव है जब हम उच्च आदर्शों की ओर उन्मुख हों एवम् बुराइयों की ओर से जनसाधारण को विमुख करें। इस प्रकार के आदर्श की स्थापना तथा बुराइयों का उन्मूलन हम नैतिकता के ही बल पर कर सकते हैं। इसलिए नैतिकता वह दृढ़ आधार है जिसपर नागरिकशास्त्र का भवन निर्मित हो सकता है।

० इतिहास और नागरिकशास्त्र—इतिहास द्वारा हम अपनी प्राचीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक अवस्थाओं का पता चल सकते हैं। इस प्रकार हम वर्तमान नागरिकता के मूल आधार का अध्ययन कर सकते हैं। ऐतिहासिक घटनाओं, परिस्थितियों एवं पूर्व अनुभवों के आधार पर हम भविष्य की नागरिकता का स्वरूप भी निर्धारित कर सकते हैं।

विज्ञान और नागरिकशास्त्र—महान् वैज्ञानिकों का कथन है कि विज्ञान का उद्देश्य समाज की सेवा करना है। विज्ञान मानव समाज के कल्याण का अग्रदूत है। इस प्रकार नागरिकशास्त्र से इसका उद्देश्य भिन्न नहीं है। विज्ञान ने विश्व के विभिन्न राष्ट्रों की दूरी को समाप्त कर दिया है। इसी से हम आज विश्वराष्ट्र की नागरिकता का स्वप्न देख रहे हैं। इस प्रकार नागरिकशास्त्र के विकास में विज्ञान का योग प्रत्यक्ष लक्षित होता है। कौन कह सकता है कि भविष्य के वैज्ञानिक आविष्कारों के प्रभाव से नागरिकशास्त्र का क्या स्वरूप हो जायगा।

साहित्य, संगीत, कला और नागरिक शास्त्र—साहित्य समाज का दर्पण है। राष्ट्र की आत्मा की स्पष्ट झलक हमें साहित्य में मिलती है। राष्ट्रोत्थान में साहित्यिकों का प्रमुख हाथ रहता है। तुलसीदास, सूरदास, रवीन्द्रनाथ, प्रेमचन्द आदि ने अपनी रचनाओं से हमारे जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया है। उनका विचार तथा प्रेरणाएँ नागरिकता की आधार-शिला हैं। यही संगीत तथा कला के लिए भी कुछ सत्य है इसलिए साहित्य एवं नागरिकशास्त्र का घनिष्ठ सम्बन्ध है।

नागरिक शास्त्र और अर्थशास्त्र—आर्थिक प्रश्न हमारे जीवन को प्रभावित करने वाले प्रमुख अङ्ग हैं। स्थिति पर ही मानव मात्र का रहन-सहन, सम्यता, नैतिकता, कला, संगीत तथा साहित्य बहुत कुछ निर्भर है। आर्थिक चिन्ताओं से मुक्त व्यक्ति ही प्रायः सम्यता तथा संस्कृति के विकास पर गमन करते हैं। अन्यथा वे अपनी जीविका की चिन्ता में व्यस्त हो येन-केन-प्रकारे अपनी जीवन-यात्रा भी समाप्त कर देते हैं। आज भी राजनीतिक समस्याओं मूल में आर्थिक प्रश्न ही संसार को विचलित कर रहे हैं। अतः अर्थशास्त्र अध्ययन की आवश्यकता नागरिकशास्त्र की पूर्णता का प्रमुख अङ्ग है।

नागरिकशास्त्र और राजनीति—नागरिकशास्त्र वास्तव में राजनीति का संक्षिप्त रूप है। राजनीतिशास्त्र में राज्यों की उत्पत्ति विकास शासनप्रणाली, न्याय-व्यवस्था आदि का वर्णन मिलता है। इससे विश्व में प्रचलित सभी राजनीतिक संगठन का अध्ययन किया जाता है। नागरिकशास्त्र में भी इन्हीं विषयों का अध्ययन करते हैं पर उसकी सीमा विश्व तक न पहुँच देश विशेष तथा स्थानीय राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवम् आर्थिक ज्ञान तक रहती है।

इसी प्रकार नागरिकशास्त्र का सम्बन्ध मनोविज्ञान, विधानशास्त्र, जीवशास्त्र, सन्तानशास्त्र, धर्मशास्त्र, न्यायशास्त्र तथा शिक्षाशास्त्र से भी है।

उपर्युक्त सभी शास्त्रों से सामग्री लेकर नागरिकशास्त्र में समाविष्ट की जाती है। इन्हीं के आधार पर नागरिकों के अधिकार एवं कर्तव्य की विवेचना तथा आनन्दमय जीवन की कल्पना की जाती है।

—:०:—

अध्याय २

नागरिकों के अधिकार एवम् कर्तव्य

नागरिकता का तत्त्व—

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज में ही उसके जीवन का सुख निहित है। यदि वह एकाकी जीवन व्यतीत करे तो उसका जीवन ही दूभर हो जाय। इसलिए समाज की उन्नति मनुष्य के लिए वरदान है। मनुष्य समाज में उत्पन्न होता है। समाज में ही उसका पालन-पोषण होता है। समाज के द्वारा ही उसकी ज्ञानवृद्धि होती है। वह जैसे समाज में रहता है उसी के अनुरूप उसका जीवन ढलता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति का परम पुनीत कर्तव्य है कि वह समाज की उन्नति करे। इससे वह भी व्यक्तिगतरूपे से लाभान्वित होगा। प्रायः यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या मनुष्य को अपनी व्यक्तिगत उन्नति का ही ध्यान रखना चाहिये? इसका उत्तर स्पष्ट है कि केवल व्यक्तिगत उन्नति उसके लिए हितकर नहीं होगी। मनुष्य-समाज की ईर्काई ही उत्तम हो और

सास समाज पिछड़ा हो तो व्यक्तिगत उन्नति में पद पद पर अड़चनें पड़ेंगी। इन अड़चनों के कारण व्यक्ति की उन्नति यदि नितान्त असम्भव नहीं तो अत्यन्त दुष्कर तो अवश्य हो जायगी। किसी प्रकार व्यक्ति यदि अपनी उन्नति कर भी ले तो उसकी प्रगति अत्यन्त मन्द होगी और वह उस सीमा तक नहीं पहुँच सकता जहाँ उसे अपने अध्यवसाय तथा परिश्रम से पहुँचना चाहिये था। इसके विपरीत यदि समाज उन्नत है तो व्यक्ति के मार्ग में अवरोध न होगा वरन् वह समाज के अनुभव तथा आदर्शों से प्रेरणा ग्रहणकर अपने मार्ग पर अबाध गति से अग्रसर होगा। उसकी उन्नति भी उच्चकोटि की होगी। इसीलिए कहा गया है कि मनुष्य को अपनी उन्नति से ही सन्तुष्ट न होना चाहिए वरन् सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये। साथही सर्वहितकारी सामाजिक नियमों का पालन करने में परतन्त्र तथा निज हितकारी नियमों के पालन में स्वतन्त्र रहना चाहिये। इसका तात्पर्य यही है कि व्यक्ति और समाज एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। समाज का यह धर्म है कि वह व्यक्ति विशेष की उन्नति में रोड़े न अटकाये और व्यक्ति का धर्म है कि वह अपनी उन्नति के साथ साथ समाज की उन्नति भी करता रहे।

अधिकार और कर्तव्य—

अधिकार शब्द की ऐसी परिभाषा करना अत्यन्त कठिन है जिससे सब लोग सहमत हों। विभिन्न विचारों के लोग अपने अपने ढङ्ग से इसकी व्याख्या करते हैं। कुछ व्यक्ति ईश्वरीय अधिकार, कुछ प्राकृतिक अधिकार, कुछ जन्मसिद्ध अधिकार तथा कुछ राजनीतिक अधिकार पर बल देते हैं। अधिकार हमारी वह शक्ति है जिसके द्वारा हम अपने उद्देश्य की पूर्ति तथा उन्नति के लिए उन सब कार्यों को कर सकें जिनके करने से अन्य नागरिकों की उन्नति में बाधा न पड़े। समाज या राज्य उसे स्वीकार करे तथा उसकी रक्षा भी करे।

जैसे किसी व्यक्ति को स्वतन्त्रता का अधिकार है। पर स्वतन्त्रता का अर्थ यह नहीं है कि उसमें उच्छृङ्खलता आ जाय और कहे कि मुझे स्वतन्त्रता का अधिकार है, इसलिए मैं चाहे जो कुछ कर सकता हूँ। यदि वह सबक पर चलता है तो उसे चलने का अधिकार तो है किन्तु वह यह नहीं कह सकता कि मैं

दायें या बायें किसी भी ओर चल सकता है । उसे बायीं ओर से चलना पड़ेगा क्योंकि उसके मनमानी ढङ्ग से चलने पर अन्य लोगों की प्रगति में बाधा पड़ेगी । इसलिए उसे अपने अधिकार का सदुपयोग ही करने का अधिकार है । यदि वह उसका दुरुपयोग करता है तो उसका यह अधिकार छीना भी जा सकता है । समाज ऐसे दुरुपयोग को कभी सहन नहीं कर सकता । अतः अधिकार में दो भावनाएँ निहित रहती हैं । पहली भावना तो यह है कि व्यक्ति उन्नति तथा उद्देश्य पूर्ति के कार्य करने में स्वतन्त्र है और दूसरी यह कि उसकी इस शक्ति का समाज समर्थन करे तथा आवश्यकतानुसार रक्षा भी करे । मनुष्य के अनेक अधिकार हैं पर प्रत्येक अधिकार के साथ कर्तव्य भी रहते हैं । कर्तव्य और अधिकार एक दूसरे के पूरक हैं । अधिकार के द्वारा व्यक्ति को यह शक्ति प्राप्त होती है कि वह अपना कार्य करे और समाज उसमें विघ्न न डाले । साथ ही कर्तव्य के द्वारा यह प्रयत्न होता है कि वह स्वार्थरत होकर इतना अन्धा न बन जाय कि समाज के लिए हानिकर सिद्ध हो । प्रत्येक मनुष्य अधिकार को प्राप्त करने की लालसा रखता है । उसे यह भी ध्यान रखना चाहिये कि कर्तव्य का पालन करना भी उतना ही महत्वपूर्ण है । उक्त उदाहरण में यदि व्यक्ति को सबक पर चलने का अधिकार प्राप्त है तो उसका यह कर्तव्य भी है कि वह अपनी चाल से अन्य व्यक्तियों को बाधा न पहुँचाये । कर्तव्य जहाँ एक ओर व्यक्ति की उच्छृङ्खलता को रोकता है वहीं दूसरी ओर समाज की उच्छृङ्खलता को नियन्त्रित करता है । मान लीजिये आपको भाषण की स्वतन्त्रता प्राप्त है जिससे अपने विचारों का प्रसार कर सकें । इस अधिकार की प्राप्ति से ही आपका कल्याण नहीं हो सकता । आपका कर्तव्य है कि आप इस अधिकार का लाभ उठावें । इसके लिए समाज पर भी यह प्रतिबन्ध लगाया जाता है कि आपके विचारों के प्रसार में बाधा न पहुँचावे । समाज ऐसा कर भी नहीं सकता क्योंकि इस अधिकार की स्वीकृति समाज दे चुका है और इसकी रक्षा का भी भार उस पर है । अतः समाज का यह कर्तव्य हो जाता है कि आपके अधिकार की रक्षा करे । सारांश यह है कि प्रत्येक अधिकार के साथ कर्तव्य भी होता है । यदि व्यक्ति अधिकार के लिए इच्छुक है तो उसे कर्तव्य-पालन के लिए भी प्रस्तुत रहना चाहिये ।

अपने प्रति कर्तव्य — ७

मनुष्य जीवन अत्यन्त दुर्लभ है। इसका महत्त्व इसलिए अधिक है कि परमेश्वर ने मनुष्य को ज्ञान तथा विवेक का वरदान दिया है। इसलिए वह सभी प्राणियों में श्रेष्ठ माना जाता है। अन्य जीव भी यथाज्ञान अपने कर्तव्य का पालन करते हैं पर मनुष्य को तो इस पर विशेष ध्यान देना चाहिये। मनुष्य के अपने प्रति अनेक कर्तव्य हैं। इन कर्तव्यों के पालन न करने से उसमें अनेक त्रुटियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। फलस्वरूप उसकी शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं और वह संसार में किसी प्रकार की उन्नति नहीं कर सकता। उसका जीवन भी भार हो जाता है अतः आनन्दमय उन्नत जीवन के लिए सभी कर्तव्यों का पालन करना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है।

सर्वप्रथम उसे अपने शरीर पर ध्यान देना चाहिये। शारीरिक उन्नति एवं विकास सभी उन्नति तथा विकास का आधार है। शरीर की उन्नति से ही मानसिक, आत्मिक तथा बौद्धिक उन्नति सम्भव है। मनुष्य को अपना स्वास्थ्य ठीक रखना चाहिये। शरीर को स्वच्छ रखना चाहिये। शुद्ध वायु का सेवन करना चाहिये एवम् शुद्ध जल तथा सात्विक भोजन करना चाहिये। मादक द्रव्यों का सेवन भूल कर भी न करना चाहिये। शारीरिक विकास के लिए यथा आवश्यकता व्यायाम करना चाहिये। खान-पान तथा व्यायाम के अतिरिक्त आचरण को पवित्र रखना बहुत आवश्यक है। नैतिक नियमों का पालन करना चाहिये। अन्यथा सब कुछ होते हुए भी अनाचार के कारण स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। नैतिक नियमों के पालन करने से मानसिक तथा आत्मिक शक्तियाँ बलवती एवं विकसित होती हैं। शिक्षा एवं संस्कृति द्वारा मन को ऊँचा उठाने का प्रयत्न करना चाहिये। इससे अपने साथ साथ समाज की भी उन्नति होती है। परिवार में मनुष्य के अधिकार और कर्तव्य—

पति-पत्नी तथा सन्तान के समूह को परिवार कहते हैं। उसका उद्देश्य अपने वंशका पालन-पोषण, रक्षा तथा विकास करना होता है। सम्मिलित परिवार में माता, पिता उनकी सन्तान तथा अन्य सम्बन्धी भी एक साथ एक ही मकान में निवास करते तथा भोजन करते हैं।

परिवार में सभी सदस्यों के एक दूसरे के प्रति अधिकार एवं कर्तव्य रहते हैं। पिता अपनी पत्नी, सन्तति तथा आश्रितों का पालन-पोषण करना अपना कर्तव्य समझता है। वह पत्नी के साथ जीवन संगिनी का व्यवहार करता है। परिवार में यदि उससे बड़ा व्यक्ति है तो उसका आदर करता है। वह छोटे से प्यार करता है। वह अपनी सन्तान को सुशिक्षित, सच्चरित्र एवं सभ्य बनाने की चेष्टा करता है जिससे वे भविष्य में अच्छे नागरिक बनें तथा अपनी जीविका उपार्जित कर सकें। उसे बहुत सहनशील बनना पड़ता है। वह अपने परिवार के लिए अपने स्वार्थों का त्याग करता है। सबके साथ उचित व्यवहार करता है। वह अपने सामने आदर्श रखता है कि—

मुखिया मुख सो चाहिये, खान पान को एक ।

पालै पोसै सकल अङ्ग, तुलसी सहित विवेक ॥

वह किसी के साथ पक्षपात नहीं करता। क्या आप जानते हैं वह ये काम क्यों करता है? इन सब कार्यों के करने का एकमात्र कारण यह है कि वह इन को अपना कर्तव्य समझता है।

अब उसके अधिकारों पर भी विचार करें। इन कर्तव्यों के बदले उसको अनेक अधिकार भी प्राप्त होते हैं। उसे अधिकार है कि वह परिवार के सदस्यों को आज्ञा दे और वे उसकी आज्ञाओं का पालन करें। सब लोग उसका आदर करें। वे कोई ऐसा काम न करें जो उसकी इच्छा के विरुद्ध हो अथवा जिसके करने से पिता की मान-हानि हो। यदि कोई सदस्य भूल करे तो पिता को डाँटने या दण्ड देने का भी अधिकार है। जहाँ इस प्रकार का व्यवहार पिता के साथ नहीं होता वहाँ पिता मानसिक चिन्ता से पीड़ित रहता है। वह अपने कर्तव्यों का निर्वाह नहीं करता।

माता का कर्तव्य है कि वह अपने पति की सच्ची अधीक्षिनी बने। परिवार के कार्यों में हाथ बँटाये। उसे गृहस्थी के सब कार्यों को सुचारु रूप से करना चाहिये। घर को सुव्यवस्थित रखना उसका परम कर्तव्य है।

उसे बच्चों का लालन-पालन करना चाहिये। बालकों की शिक्षा का उत्तरदायित्व भी उसी पर है। उसे संकट के समय अपने पति को प्रोत्साहित करना

चाहिये जिससे वह जीवनसंघर्ष में विजय प्राप्त करे। उसे छल कपट या बेईमानी न करनी चाहिये और न तो कलह और झगड़े ही करना चाहिये। इन कर्तव्यों के बदले उसे अधिकार है कि सच्ची गृहिणी का गौरव और आदर प्राप्त करे। सन्तान उसके साथ आदर का व्यवहार करे तथा उसकी आज्ञाओं का पालन करे।

सन्तान का कर्तव्य है कि वह अपने बड़ों की आज्ञाओं का पालन करे। वह बड़ों के साथ आदर का भाव रखे और कोई ऐसा कार्य न करे जिससे उनके हृदय को चोट लगे। सन्तान को अधिकार है कि वह पालन-पोषण तथा शिक्षा-दीक्षा की पूरी सुविधा प्राप्त करे। आवश्यकतानुसार उसके अपराधों को क्षमा किया जाय तथा शुभ कर्मों के लिए प्रोत्साहित किया जाय। इस प्रकार परिवार में एक दूसरे के प्रति सभी अपने कर्तव्य तथा अधिकार को ध्यान में रखकर व्यवहार करें

नागरिकों के अधिकार और कर्तव्य—

भारतवर्ष में कृषि अधिक होती है। अतः अधिकांश जनता ग्रामों में ही निवास करती है। खेतों के बीच-बीच में किसानों की बस्ती होती है। जहाँ तक स्वच्छ वायु तथा जल का प्रश्न है वे इसका लाभ उठाते हैं। पर गाँवों की दूषिता के कारण मकान छोटे तथा कच्चे बनाये जाते हैं। उनके वायु तथा प्रकाश के प्रवेश की समुचित व्यवस्था नहीं रहती। अशिक्षा के कारण ग्रामवासी स्वच्छता तथा स्वास्थ्य के नियमों का पालन नहीं करते। वैसे तो उनका स्वास्थ्य नगर निवासियों से उत्तम होता है क्योंकि वे कठिन शारीरिक परिश्रम करने तथा स्वच्छ जल वायु के सेवन का अवसर प्राप्त करते हैं। पर गन्दगी, असावधानी तथा समुचित चिकित्सा के अभाव के कारण ग्रामों में संक्रामक रोग अधिक तथा भयंकर रूप में फैलते हैं। ग्रामों में याक्ष्यात के साधन एवं मार्गों का अत्यधिक अभाव है। इसलिए वे अपने अस्त्रादि को बाजार तक लाने में असमर्थ होते हैं। उन्हें प्रायः व्यापारियों की शरण लेनी पड़ती है। ये व्यापारी अपने स्वार्थ-साधन की ओर विशेष ध्यान देते हैं। उन्हें किसानों को चूसने में ही गौरव प्रतीत होता है। इस प्रकार ग्रामीण जनता की दुर्गति होती है। राज्य के शासक प्रायः

नगरों में निवास करते हैं। उन्हें ग्रामीण वातावरण का वास्तविक ज्ञान नहीं रहता। ऐसी स्थिति में राज्य के शासक ग्रामीणों के प्रति कर्तव्य पालन करने में सर्वथा नहीं तो अधिकांश रूप में असमर्थ रहते हैं। ब्रिटिशशासन में तो गाँवों की स्थिति दयनीय हो गयी थी। गाँव वालों का अधिकार है कि वे शिक्षा प्राप्त करें। उनको आर्थिक सहायता दी जाय और उनके निवास गृहों को स्वच्छ, प्रकाशपूर्ण एवं हवादार बनाया जाय। उनकी कुरीतियाँ दूर हों। उनके लिए यातायात के साधन तथा मार्ग की व्यवस्था हो। इन सब का प्रबन्ध नगर में रहने वाले शासक उतनी अच्छी तरह नहीं कर सकते जितनी अच्छी तरह ग्रामवासी स्वयं कर सकते हैं। इसी लिए ग्राम-शासन के लिए ग्राम-सभाओं का संघटन किया गया है। पहले ग्राम-सभाओं का अधिकार अत्यन्त सीमित था। पर १९४९ से ग्राम-प्रबन्ध नये ढंग से हुआ है। अब ग्रामों के लिए ग्राम-सभाओं की व्यवस्था है। प्रत्येक वयस्क व्यक्ति इसका सदस्य हो सकता है। ग्रामवासियों को यह अधिकार है कि अपने सभापति, उपसभापति तथा पंच स्वयं निर्वाचित करें। अपने ग्राम की सफाई, शिक्षा तथा अन्य व्यवस्थाओं का स्वयं प्रबन्ध करें। इन अधिकारों के प्राप्त करलेने मात्र से ग्रामोन्नति नहीं हो सकती। आवश्यकता तो इस बात की है कि सभी ग्रामवासी अपने कर्तव्यों का भी पालन करें। उन्हें ग्राम-सभाओं का सदस्य बनना चाहिये। पक्षपात रहित होकर उत्तम भावना से कार्य करना चाहिये। ग्रामों, ग्राम-सभाओं के कार्यों में पूर्णरूप से सहयोग देना चाहिये। स्वीकृत योजनाओं के अनुसार कार्यान्वित करने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये। ग्राम-सभाओं द्वारा लगाये गये करों को चुकाने में किसी प्रकार की आनाकानी न करनी चाहिये।

यह हम पहले ही कह चुके हैं कि भारत की अधिकांश जनता ग्रामों में रहती है। पर भारतीय जनता का एक महत्त्वपूर्ण भाग नगरों में निवास करता है। यहाँ की समस्याएँ ग्रामों से भिन्न हैं। नगरों में आपसी प्रेम कम होता है। अतः एक-दूसरे के प्रति उतनी सहानुभूति नहीं पायी जाती जितनी कि ग्रामीण क्षेत्रों में मिलती है। नगर में स्वार्थपरता अधिक पायी जाती है। नगरों की जनता अधिक धनी वस्ती में रहती है। थोड़े स्थान में अधिक लोग रहते हैं। इसलिए यहाँ के मकान भी संकीर्ण होते हैं। गलियाँ पतली

होती हैं, जहाँ न तो शुद्ध वायु का प्रवेश होता है और न प्रकाश का। नगरों में मकान-मालिक कम होते हैं। किरायेंदारों की संख्या अधिक है। किरायेंदारों को मकान के प्रति कोई मोह नहीं होता। अतः वे मनमाने ढङ्ग से गन्दगी करते हैं। इन कारणों से नगरों में शुद्ध जल वायु प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। इससे नगर-निवासियों का स्वास्थ्य अधिक खराब होता है। लोग नाना प्रकार के रोगों के शिकार होते हैं। यहाँ शिक्षा, स्वच्छता तथा चिकित्सा का उत्तम प्रबन्ध रहता है। यातायात के साधन सुलभ हैं तथा मार्ग भी प्रशस्त मिलते हैं। थोड़े स्थान में अधिक धन एकत्र हो जाने से अनैतिक-अपराध अधिक होते हैं।

नगरों की व्यवस्था स्थानीयसंस्था नगरपालिका द्वारा होती है। जिस प्रकार ग्राम-निवासियों को राज्य की ओर से अनेक अधिकार मिले हैं उसी प्रकार नगर-निवासियों के भी अधिकार हैं। उन्हें भी शिक्षा, स्वास्थ्य-साधन, चिकित्सा, व्यापार आदि की सुविधा का अधिकार है। स्थानीय संस्थाएँ इसकी पूर्ण व्यवस्था करती हैं। इन संस्थाओं के सदस्य भी सभी वयस्क व्यक्ति हो सकते हैं। नगरनिवासियों का भी कर्तव्य है कि इसके निर्वाचन में सम्मिलित हों। इनके द्वारा संचालित योजनाओं एवं कार्यों में पूर्ण रूप से सहयोग दें। नगर-पालिकाओं के कर्तव्यों को चुकावें।

इस प्रकार सभी नागरिकों को अपने अधिकार प्राप्त करना चाहिये। साथ ही साथ अपने कर्तव्यों का भी पालन करना चाहिये। इसी अवस्था में देश की सर्वाङ्गीण उन्नति सम्भव है।

राज्य तथा नागरिकों के अधिकार—

१ जीवन रक्षा का अधिकार—प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन की रक्षा चाहता है। यदि उसे यह विश्वास हो जाता है कि उसका जीवन सुरक्षित है तभी वह अन्य समस्याओं अथवा विकास की ओर ध्यान दे सकता है। अतः प्रत्येक नागरिक का अधिकार है कि राज्य उसकी रक्षा करे। उसकी प्राण-रक्षा के लिए राज्य बाह्य एवं आन्तरिक आक्रमणों से बचावे। उसे आत्महत्या भी न

करने दे। राज्य उसे अन्न-शाल सुञ्जालन योग्य भी बनावे जिससे वह स्वयं अपनी रक्षा कर सके।

२-सम्पत्ति की रक्षा का अधिकार—नागरिक का यह अधिकार है कि राज्य उसकी सम्पत्ति की भी रक्षा करे। सम्पत्ति की रक्षा का आश्वासन या विश्वास पाने पर ही वह इसके संचय के लिए प्रयत्नशील होगा। इस प्रकार वह अपनी उन्नति तथा विकास भी कर सकेगा। अन्यथा वह किसी प्रकार अपने सद्गुण की पूर्ति कर ही सन्तोष कर लेगा। सम्पत्ति की आशा से मनुष्य जीवन के अनेक संघर्षों एवं कष्टों का सामना करता है। यदि उसे सम्पत्ति की रक्षा का विश्वास न हो तो वह इसके लिए प्रयत्न ही नहीं करेगा।

३-जीविका का अधिकार—प्रत्येक नागरिक का अधिकार है कि राज्य द्वारा उसके लिए जीविका की व्यवस्था हो। यदि राज्य उसकी व्यवस्था में असमर्थ हो तो उसे जीविका देने तक उसके भरण-पोषण का भार अपने ऊपर ले। नागरिक को यह भी अधिकार है कि उसके परिश्रम की उचित मजदूरी मिले। उसके काम के घण्टे (समय) निर्धारित हों। उसे भी विश्राम तथा मनोरंजन का समय मिलना चाहिये। राज्य का यह कर्तव्य है कि नागरिकों के लिए ये सभी व्यवस्थाएँ करे।

४-समानता का अधिकार—प्रत्येक नागरिक का अधिकार है कि उसके साथ समानता का व्यवहार हो। सभी लोग समान समझे जायँ। कुल, जाति अथवा वर्ण के आधार पर किसी को विशेष सुविधा न दी जाय और न तो किसी अधिकार से वञ्चित किया जाय। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी उन्नति का समान अवसर मिले। किसी प्रकार का पक्षपात किसी भी नागरिक के साथ न हो।

५-शिक्षा का अधिकार—नागरिक ही राज्य का गौरव है। इसलिए राज्य का कर्तव्य है कि वह अपने नागरिकों को शिक्षित बनावे। नागरिक का अधिकार है कि उसे शिक्षा का निर्विघ्न अवसर मिले। शिक्षित व्यक्ति का जीवन उत्तम तथा आचरण शुद्ध होता है। वह सभी कार्यों को विवेकपूर्वक करता है। इसलिए नागरिकों की शिक्षा की व्यवस्था अनिवार्य है। प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य भी है कि वह राज्य की शिक्षा-व्यवस्था से पूर्णतः लाभ उठावे।

६-धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार—राज्य की ओर से मनुष्य के धार्मिक विचारों पर कोई प्रतिबन्ध न होना चाहिये। प्राचीन काल में अनेक राज्यों में यह प्रतिबन्ध रहा है। इसी के कारण उस राज्य का नाश भी हुआ है। अतः राज्य के हित की दृष्टि से भी यह आवश्यक है कि धार्मिक स्वतन्त्रता दी जाय। नागरिकों को यह अधिकार होना चाहिये कि अपने विश्वास के अनुसार किसी भी धर्म का पालन करे। धर्म के लिए मनुष्य प्राण का भी उत्सर्ग करने को प्रस्तुत रहता है। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे। यह तो मनुष्य की भावना पर निर्भर है। इसलिए नागरिक का अधिकार है कि अपने विश्वास के अनुसार किसी भी धर्म को माने।

७-संस्कृति का अधिकार—प्रत्येक व्यक्ति अपने पूर्वजों के प्रति श्रद्धा रखता है। वह पूर्वकाल की रीति, रहन-सहन तथा व्यवस्थाओं के प्रति भी पूर्ण आस्था रखता है। इसका सम्बन्ध मानव भावनाओं से उसी प्रकार का है जैसा धर्म का। इसलिए संस्कृति के अवलम्बन के लिए भी नागरिकों को स्वतन्त्र रहने का अधिकार है।

८-विचार-स्वातन्त्र्य का अधिकार—राज्य मनुष्य के शरीर पर तो अधिकार कर सकता है पर उसके मस्तिष्क पर अधिकार करना नितान्त असम्भव है। इसलिए राज्य को चाहिये कि वह नागरिकों के विचारों तथा भावनाओं का आदर करे। यदि वे उचित हों तो उनके अनुसार राज्य की नीति में परिवर्तन करना भी आवश्यक है। जनता का विचार तभी ज्ञात हो सकता है जब कि उसे भाषण देने तथा लिखने की पूर्ण स्वतन्त्रता हो। वह अपने विचारों का अगिन्यक्तन निर्भीक होकर करे। नागरिकों पर राज्य निर्भर करता है। अतः नागरिकों को अधिकार होना चाहिये कि वे स्वतन्त्रता पूर्वक भाषण दे सकें या लेख लिख सकें।

९-सभा करने का अधिकार—राज्य की ओर से नागरिकों को यह अधिकार मिलना चाहिये कि वे सभा करके अपने विचारों को जनता के सम्मुख रखें। यदि उनके विचार ठीक होंगे तो जनमत उनके पक्ष में हो जायगा। अन्यथा वे विचार वायु में विलीन हो जायँगे। उन्हें अपने संगठन करने का भी

अधिकार होना चाहिये । इस प्रकार विभिन्न कार्य करनेवाले व्यक्ति अपना समूह बनाकर विचार-विनिमय कर सकते हैं और अपने हितों की रक्षा कर सकते हैं ।

१०-मत देने का अधिकार—राज्य की नींव तभी सुदृढ़ हो सकती है जब कि राज्य की व्यवस्था में प्रत्येक नागरिक का सहयोग हो । प्रत्येक नागरिक तो राज्य की व्यवस्था में भाग ले नहीं सकता । इसलिए मतदान द्वारा वह अपना प्रतिनिधि चुनता है । ये ही प्रतिनिधि राज्य के कर्णधार होते हैं । इस प्रणाली के कारण प्रत्येक नागरिक यह अनुभव करता है कि उसके मत का भी मूल्य है । वह उत्तरदायित्व का अनुभव करता है । राज्य के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करता है । अतः प्रत्येक नागरिक को अधिकार होना चाहिये कि वह अपना मत देकर राज्य व्यवस्था में हाथ बँटावे ।

११-शासन की आलोचना का अधिकार—शासन शक्ति द्वारा होता है । यदि शक्ति पर अंकुश न रहे तो वह उच्छृङ्खलता की ओर अग्रसर हो जाती है । अतः आवश्यक है कि राज्य की आलोचना का स्वागत किया जाय । इससे जहाँ एक ओर शासक वर्ग पर नियन्त्रण रहता है वहाँ दूसरी ओर राज्य के दोष भी प्रत्यक्ष होते रहते हैं । इन दोषों के आधार पर शासन में सुधार का कार्य सुगम होजाता है । अतः राज्य की ओर से यह अधिकार नागरिकों को अवश्य मिलना चाहिये कि वे राज्य-शासन की आलोचना कर सकें ।

हाँ इसके लिए यह अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि निराधार एवं अनावश्यक आलोचना प्रगति में बाधक होती है । अतः नागरिकों का कर्तव्य है कि वे सच्ची एवं लाभदायक आलोचना करें ।

अधिकारों का प्रयोग —

प्रत्येक नागरिक को उक्त अधिकारों से लाभ उठाना चाहिये । पर उसकी भी एक सीमा है । जहाँ तक कि अधिकारों का सदुपयोग होता है वहाँ तक तो उचित ही है । पर उसका दुरुपयोग नहीं होना चाहिये । भाषण की स्वतन्त्रता प्रत्येक नागरिक को होनी चाहिये । पर इस अधिकार का सदुपयोग होना आवश्यक है । यदि कोई अपने विचारों को स्वतन्त्रता पूर्वक प्रकट करता है तो इसमें न तो राज्य को आपत्ति हो सकती है और न किसी व्यक्ति को । यदि हम इस अधिकार का दुरुपयोग करें और अपने भाषण में दूसरों पर निराधार

अक्षिप करें या दूसरे व्यक्तियों का अपमान करें तो हमें इस अधिकार से वंचित किया जा सकता है। केवल अधिकार-वञ्चित ही नहीं किया जा सकता वरन् राज्य या व्यक्ति की ओर से उस पर अभियोग (सुकदमा) भी चलाया जा सकता है। इस कार्य के लिए वह दण्डित भी किया जा सकता है। राज्य के लिए अनिवार्य है कि वह अधिकारों को प्रदान करे और नागरिकों का कर्तव्य है कि उन अधिकारों का सदुपयोग करें।

नागरिकों के कर्तव्य—

जिस प्रकार राज्य की ओर से नागरिकों को अधिकार मिलते हैं और राज्य का कर्तव्य होता है कि उन अधिकारों के उपभोग की पूरी सुविधा नागरिकों को दे, उसी प्रकार नागरिकों का भी कर्तव्य है कि राज्य के प्रति भक्ति रखें। उससे द्रोह न करें। वे किसी प्रकार का ऐसा कर्म न करें, जिससे राज्य में अराजकता, अशान्ति अथवा अन्यवस्था फैल जाय। केवल इतने से ही उनके कर्तव्य की इति-श्री नहीं हो जाती बल्कि उन्हें ऐसी अवस्था में राज्य की सहायता करनी चाहिये। यदि आवश्यकता पड़े तो देश की रक्षा तथा शान्ति के लिए अपने प्राण को भी उत्सर्ग कर दें। राजकीय नियम जन-हित के लिए बनाये जाते हैं। नागरिकों को इनका पालन करना चाहिये। उनके प्रतिनिधि ही इन नियमों को बनाते हैं इसलिए उनका उत्तरदायित्व और भी बढ़ जाता है। यदि कोई नियम अहितकर सिद्ध हो तो उसको हटाने या संशोधित करने के लिए वैधानिक ढंग से आन्दोलन करना चाहिये। उसकी आलोचना भी मर्यादा पूर्वक की जा सकती है। राज्य के व्यय के लिए नागरिकों पर कर लगाये जाते हैं। प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह इन करों को प्रसन्नता पूर्वक दे तथा अन्य लोगों से भी दिलवाने का प्रयत्न करें।

देश की रक्षा के लिए सेना रखी जाती है। पर यह सेना सर्वदा पर्याप्त नहीं होती। इसलिए बाहरी आक्रमण के समय या आन्तरिक अशान्ति के समय सेना में भरती हो कर प्राण-प्रण से देश की रक्षा करनी चाहिये।

नागरिकों का कर्तव्य है कि वे विभिन्न राजकर्मचारियों के कार्य में सहायता दें। जने प्रतिनिधियों को चाहिये कि वे सच्चे हृदय से जनता की सेवा करें।

वे अत्यन्त दृढ़ता, निःस्वार्थ, तथा विवेक के साथ नियमों का निर्माण करें तथा उनको कार्यान्वित कराने का प्रयत्न करें ।

यदि राज्य तथा नागरिक सभी अपने अधिकारों तथा कर्तव्यों के अनुसार कार्य करें तो राज्य सचमुच स्वर्ग बन सकते हैं और सबका जीवन आनन्दमय हो सकता है ।

—०—

अध्याय ३ स्थानीय शासन

भारत में बहुत प्राचीन काल से स्थानीय शासन प्रणाली प्रचलित थी रामायण और महाभारत-काल के अतिरिक्त मौर्यकाल के यूनानी यात्री मेगस्थनीज ने ऐसी संस्थाओं का उल्लेख किया है जो स्थानीय शासन करती थीं । मुसलमानी शासन में भी ऐसी संस्थाओं का अस्तित्व था । पर ब्रिटिश शासन ने इस प्रणाली का अस्तित्व ही मिटा दिया । कालान्तर में ब्रिटिश शासकों को शासन का भार अत्यधिक प्रतीत होने लगा तथा देश के राष्ट्रिय आन्दोलनों से विवश हुए । इसलिए उन्होंने 'स्थानीय स्वराज्य' के नाम से ऐसी संस्थाओं का पुनर्निर्माण किया । उनके शासन काल में इन संस्थाओं को नाममात्र का अधिकार तथा स्वतन्त्रता थी । पर भारत के स्वतंत्र होने पर इन संस्थाओं के अधिकार बढ़ाये गये तथा उनके दूषित नियमों का परिमार्जन हुआ । ब्रिटिश शासन में स्थापित नगरपालिका, जिला-पालिका, नोटिफाइड एरिया, कैप्टोमेण्ट बोर्ड के अतिरिक्त ग्रामपंचायतों की स्थापना करके गाँवों के शासन को भी ग्रामवासियों द्वारा संचालित कराने का उपक्रम हुआ । ब्रिटिश शासन में इन संस्थाओं को 'स्थानीय स्वराज्य' कहते थे पर अब इन्हें 'स्थानीय शासन' मानना ही समीचीन है । इसके द्वारा स्थानीय संस्थाओं को कुछ निश्चित कार्यों के करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है ।

स्थानीय शासन द्वारा सञ्चालित संस्थाएँ—

कार्य क्षेत्र

(१) ग्राम पंचायत ग्राम सभाएँ

ग्राम

(२) जिलापालिका (जिलाबोर्ड)

जिला

(३) नोटिफाइड एरिया

छोटे नगर

(४) कैप्टोमेण्ट बोर्ड

सैनिक-यस्ती-क्षेत्र

(५) नगरपालिका

नगर

(६) कारपोरेशन

बड़े नगर

इनके अतिरिक्त बड़े-बड़े नगरों में नगर इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट स्थापित हैं। समुद्र तट के नगरों में पोर्ट ट्रस्ट द्वारा समुद्र तट तथा समुद्री व्यापार की व्यवस्था होती है।

पंचायत राज्य—

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त संविधान की नीति के अनुसार देश में पंचायत राज्य स्थापित करने का प्रयास हो रहा है। भारत की अधिकांश जनता ग्रामों में रहती है इसलिए वास्तविक स्वतन्त्रता तो तभी सम्भव है जब देशवासी स्वयं शासन में हाथ बँटाये। इसी लिए उत्तरप्रदेश में सन् १९४७ में 'संयुक्त प्रांतीय पंचायत राज एक्ट' बनाकर ग्रामपंचायतों के संगठन का कार्य प्रारम्भ किया गया। इस समय पंचायत की तीन संस्थाएँ बना दी गयी हैं। (१) ग्राम-सभा (२) ग्राम पंचायत (३) पंचायती अदालत।

ग्रामसभा का संगठन—

ग्राम सभा ही ग्राम पंचायत का मूलाधार है। इसलिए पहले ग्राम-सभा के संगठन को समझ लेना आवश्यक है। जिस गाँव में या गाँव-समूह में एक हजार की आबादी रहती है उसमें ग्राम-सभा स्थापित की जाती है। पर जिस ग्राम या ग्राम-समूह में एक हजार की आबादी न हो और कोई ग्राम उसमें मिलाने के लिए तीन मील के भीतर न हो तो वहाँ पृथक् ग्राम सभा संगठित की जाती है। औसत के विचार से प्रायः तीन ग्रामों पर एक ग्राम-सभा संगठित होती है। ग्राम क्षेत्र का प्रत्येक निवासी जो २१ वर्ष से अधिक आयु का (वयस्क) है, ग्राम सभा का आजीवन सदस्य होता है।

निम्नांकित व्यक्ति ग्राम-सभा के सदस्य नहीं हो सकते—

(१) पागल व्यक्ति।

(२) जो व्यक्ति दिवालिया हो गया हो और दिवालियापन से मुक्त न हुआ हो।

(३) सरकारी कर्मचारी

(४) चुनाव-सम्बन्धी अपराध के लिए दण्डित व्यक्ति ।

(५) नैतिक अपराधों के दोषी व्यक्ति ।

(६) जिन्हें सदाचार के लिए जमानत देनी पड़ी हो ।

टिप्पणी—सं. २, ४ तथा ६ की अयोग्यता सरकारी आज्ञा से रद्द की जा सकती है ।

सदस्यता की अवधि—

ग्राम सभा के सदस्य तो जीवन भर के लिए होते हैं पर उक्त अयोग्यताओं के कारण अथवा स्थायी रूप से ग्राम-सभा के अधिकार क्षेत्र से बाहर रहने के कारण कोई व्यक्ति सदस्यता से वञ्चित किया जा सकता है । इन अयोग्यताओं के हट जाने पर ऐसा व्यक्ति प्रार्थना-पत्र दे तो ग्राम सभा का सभापति जाँच कर उसे फिर सदस्य होने की आज्ञा दे सकता है ।

सभापति एवं उप-सभापति

ग्राम सभा के सदस्य अपने में से ही एक सभापति तथा एक उप-सभापति चुनते हैं । इनका कार्यकाल तीन वर्ष होता है । सभा के साधारण अधिवेशन में उपस्थित व्यक्तियों के दो तिहाई मत से सदस्य इन्हें हटा सकते हैं । ऐसी दशा में रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए नये व्यक्ति को तुरन्त ही चुनना पड़ेगा ।

अधिवेशन—

ग्राम सभा को दो बैठकें वर्ष भर में अवश्य होती हैं । प्रथम खरीफ की बैठक तथा द्वितीय रबी की बैठक । खरीफ की बैठक में आगामी वर्ष के अनुमानित आय-व्यय (बजट) पर विचार करते हैं । रबी की बैठक में वर्ष-भर का वास्तविक आय-व्यय उपस्थित किया जाता है सभापति अपनी इच्छा से या कुल सदस्यों के पाँचवें भाग के सदस्यों के प्रार्थना करने पर आवेदन-तिथि से एक मास के भीतर ही अतिरिक्त बैठक बुला सकते हैं ।

ग्रामपञ्चायत—

ग्राम-सभा अपने सदस्यों में से ही निश्चित संख्या में कार्यकारिणी समिति के सदस्यों का चुनाव करती है । ग्रामसभा के सभापति तथा उप-

सभापति ही इसके भी सभापति एवं उप सभापति होते हैं। इनके अतिरिक्त सभा क्षेत्र की जनसंख्या के अनुपात से ३० से ५१ तक कार्यकारिणी सदस्य चुने जाते हैं। इसी कार्यकारिणी समिति को ही ग्राम पञ्चायत की संज्ञा दी जाती है। इनका चुनाव संयुक्त निर्वाचन प्रणाली द्वारा होता है। परिगणित जातियों के लिए संख्या के अनुपात से स्थान सुरक्षित रहता है। पञ्चायत के सदस्य तीन वर्ष के लिए चुने जाते हैं पर प्रत्येक वर्ष एक तिहाई सदस्य अवकाश ग्रहण करते जाते हैं और उनके रिक्त स्थानों की पूर्ति की जाती है।

ग्राम पञ्चायत अपने आधीन कार्य करनेवाले कर्मचारी को हटा सकती है। सचिव (सेक्रेटरी) की नियुक्ति उसके अधिकार क्षेत्र में नहीं है। सचिव की नियुक्ति सरकार द्वारा होती है।

निर्वाचन—

ग्राम सभा के लिए निर्वाचन अध्यक्ष तथा निर्वाचन क्षेत्रों के लिए पृथक् पृथक् सहायक निर्वाचन अध्यक्ष की नियुक्ति जिलाधीश करता है। ये अध्यक्ष यथा सहायक अध्यक्ष निर्वाचन की तिथि समय तथा समय निर्धारित करके घोषणा कराते हैं। निश्चित तिथि को वह अपनी अध्यक्षता में मतदान का कार्य सम्पन्न कराता है। इसमें सभापति, उपसभापति, पञ्चायत सदस्य तथा पञ्चायती अदालतों के पदाधिकारियों का चुनाव होता है।

पञ्चायत के अधिकार एवं कर्तव्य—

अपने क्षेत्र की शान्ति एवं सुव्यवस्था के लिए पञ्चायत को कुछ निश्चित अधिकार दिये गये हैं। इस अधिकार के साथ साथ उसके कर्तव्य भी हैं जिनका संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

पञ्चायत के कुछ कार्य तो ऐच्छिक हैं और कुछ अनिवार्य।

अनिवार्य कार्य—

सार्वजनिक आवागमन के क्षेत्रों की देखभाल करना तथा उसे मरम्मत आदि द्वारा उत्तम दशा में रखना पड़ता है। इसके अतिरिक्त वह अन्य कार्य भी करता है।

(१) नये पुल और पुलियों का निर्माण, स्थान परिवर्तन, परिवर्द्धन।

(२) स्वास्थ्य रक्षा की दृष्टि से जल प्राप्ति के स्थान को शुद्ध करना तथा अस्वच्छता फैलानेवाले पदार्थों को हटवाना ।

(३) अनानवश्यक पौधों तथा घासों को नष्ट करना ।

पंचायतों के ऐच्छिक कार्य—

(१) सार्वजनिक सुविधा के स्थानों जैसे सड़क, तालाब आदि के पास वृक्ष लगवाना ।

(२) पशुओं का सुधार एवं चिकित्सा ।

(३) गाँव की रक्षा, गाँव सभा के कार्यों को सुचारु रूप से संचालित करने तथा ग्रामोन्नति के कार्यों के लिए स्वयं-सेवक दल संगठित करना ।

(४) राजकीय ऋण प्राप्त करना तथा उसे चुकाने की व्यवस्था करके कृषकों की सहायता करना ।

(५) सहकारिता सम्बन्धी कार्य की उन्नति करना, बढ़िया बीज-गोदाम और औजारों की व्यवस्था करना ।

(६) जिला बोर्ड की अनुमति से उसके द्वारा संचालित कार्यों में सहयोग देना ।

आय के साधन—

ग्रामपंचायत के कोष को ग्रामकोष कहते हैं । इसमें निम्नांकित धन जमा होता है ।

(१) पंचायत द्वारा निर्धारित जायदाद कर ।

(२) प्रान्तीय सरकार द्वारा मिला हुआ धन ।

(३) किसी अदालत की आज्ञा से जमा किया हुआ धन ।

(४) किसी अपराध के सम्बन्ध में समझौते से प्राप्त धन ।

(५) पंचायती कर्मचारियों द्वारा एकत्र खाद आदि से प्राप्त धन ।

(६) सरकारी (नजूल) भूमि का कर ।

(७) सरकार, जिला बोर्ड अथवा अन्य स्थानीय संस्थाओं द्वारा प्राप्त धन ।

(८) ऋण या दान में प्राप्त धन ।

पंचायती अदालतों का संगठन—

एक क्षेत्र (सर्किल) में चार या पाँच ग्राम सभायें होती हैं। प्रत्येक सर्किल के लिए एक पंचायत अदालत का संगठन होता है। ग्राम सभाएँ अपने अधिकार क्षेत्र से निश्चित योग्यता एवं आयु वाले पाँच प्रौढ़ व्यक्तियों को चुनती हैं।

इन पंचों का समूह क्षेत्र (सर्किल) का पंचमण्डल कहलाता है। ये पंच अपने में से ही एक सरपंच चुनते हैं। सरपंच के लिए यह आवश्यक है कि वह अदालत की कार्यवाही लिखने की योग्यता रखता हो। सरपंच प्रत्येक मुकदमे के लिए पंचमण्डल में से पाँच पंच (बेंच) नियुक्त करता है। इनमें एक व्यक्ति इतना शिक्षित अवश्य होता है जो कार्यवाही लिख सके। प्रत्येक बेंच में एक पंच उस गाँव का निवासी अवश्य होना चाहिये जो वादी और प्रतिवादी गाँव अथवा पड़ोस का निवासी हो।

पंचायती अदालतों के अधिकार—

पंचायती अदालतों को दीवानी, फौजदारी तथा माल के निर्धारित मुकदमों के निर्णय करने का अधिकार है। पंचायती अदालत के निर्णय की अपील नहीं हो सकती। हाँ, अन्याय के दोषारोपण पर दीवानी के मामलों में मुंसिफ के यहाँ और फौजदारी के मामलों की निगरानी हाकिम परगना फौजदारी के यहाँ हो सकती है।

पंचायती अदालत चल सम्पत्ति या ठोरों द्वारा हानि के १००) तक के मुकदमों का निर्णय कर सकती है। राज्य सरकार ५००) तक का मामला उसके पास भेज सकती है।

फौजदारी के मुकदमे—साधारण शमारपीट, दंगा, आक्रमण, बलप्रयोग, जुआ, समन तामील न करना, ५०) रुपये से कम चोरी आदि के मुकदमों का निर्णय वह कर सकती है।

पंचायती अदालत फौजदारी के मुकदमों में केवल अर्थदण्ड दे सकती है। वह शान्ति रक्षा के लिए जमानत मुचलका ले सकती है। अदालत के पंच

नियमित अधिकारी से आदेश प्राप्त करके ही किसी राजनीतिक दल के पंदाधिकारी बन सकते हैं।

ग्राम सभा, ग्राम पंचायत तथा ग्राम अदालत पर सरकार का पूर्ण नियन्त्रण रहता है। श्रुति अथवा असन्तोषपूर्ण कार्य करने पर सरकार इन्हें भंग कर सकती है।

जिला-बोर्ड

भूमिका—

प्रार्थी जनता के हित के लिए स्थानीय शासन की दूसरी संस्था जिला-पालिका (जिला बोर्ड) है। जिला बोर्ड का कानून सन् १९२२ में बना था। उस समय से आज तक इनमें अनेक परिवर्तन एवं संशोधन हुए। यह बोर्ड जिले में उन कार्यों को करता है जिसका अधिकार इसे प्राप्त है। जिला बोर्ड को स्थापित करने का अधिकार सरकार को है। जिलाबोर्ड का उद्देश्य ग्राम की असुविधाओं को दूर करना, उसकी सेवा करना और उन्नति करना है।

जिला बोर्ड का संगठन—

उत्तर प्रदेश में ५० से अधिक जिलाबोर्ड हैं। प्रत्येक बोर्ड में एक सभापति, एक सचिव (सेक्रेटरी), अनेक सदस्य तथा कर्मचारी रहते हैं। सदस्यों की संख्या जिला बोर्ड कानून द्वारा निश्चित रहती है। शहरी क्षेत्र को छोड़कर शेष जिलों को विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों में बाँट दिया जाता है। जनसंख्या के आधार पर प्रत्येक क्षेत्र से सदस्य चुने जाते हैं। इस प्रकार बोर्ड के सदस्यों की संख्या ३० या ४० तक पहुँच जाती है। सदस्यों का चुनाव लगभग चार वर्ष के उपरान्त होता है, किन्तु राज्य सरकार को अधिकार है कि इस अवधि को बढ़ा सकती है। इसके सदस्यों को वेतन नहीं मिलता। हाँ, दौरे का भत्ता अवश्य दिया जाता है।

चुनाव—

सदस्यों का चुनाव संयुक्त प्रणाली से होता है अर्थात् किसी उम्मेदवार को सभी जाति तथा सम्प्रदाय के लोग मत देते हैं। २१ वर्ष से अधिक (वयस्क)

अवस्था के प्रत्येक व्यक्ति (स्त्री पुरुष) मत देने के अधिकारी होते हैं । इस पागल; दिवालिया या अपराधी निर्वाचित नहीं हो सकता । बोर्ड-कर्मचारी इस चुनाव में निर्वाचित नहीं हो सकते और न तो वह व्यक्ति ही निर्वाचित हो सकता है जो भारतीय संघ का नागरिक न हो ।

सभापति—

पहले जिलाबोर्ड के निर्वाचित सदस्य ही बोर्ड के सभापति को चुनते हैं पर नवीन संशोधन के अनुसार सभापति भी सभी मतदाताओं द्वारा निर्वाचित होता है । इस प्रणाली को प्रत्यक्ष मतदान प्रणाली कहते हैं । यह बैठकों सभापति का काम करता है । उप-सभापति को सदस्य ही चुनते हैं जो सभापति की अनुपस्थिति में उनका कार्यभार संभालता है । सभापति अवैतनिक होता है । उसे कुछ वार्षिक भत्ता देने का विचार चल रहा है इस प्रकार सभापति एवं सदस्य सभी निःस्वार्थ भाव से जनसेवा करते हैं मतदाताओं का कर्तव्य है कि वे ऐसे व्यक्ति को ही अपना मत दें जो वास्तव में जिले की सेवा करें । चुनाव में किसी विशेष प्रभाव में आकर मतदान करने देश का हित सम्भव नहीं । अतः बड़ी सतर्कता से कर्तव्य-निर्वाहन आवश्यकता है ।

बोर्ड के प्रमुख अधिकारी एवं कर्मचारी—

- १—सेक्रेटरी—बोर्ड के कार्यों को सुचारु रूप से चलाने का पूरा उत्तरदायित्व इन्हीं पर होता है । वैसे तो वह सभापति के आधीन होता है बोर्ड का प्रधान कार्य संचालक यही सचिव ही होता है । उसी की देख रेख में बोर्ड के सभी कर्मचारी कार्य करते हैं ।
- २—इंजीनियर—एक इंजीनियर होता है जो जनहित के लिए निर्माण विभाग का अधिकारी होता है ।
- ३—स्वास्थ्य अधिकारी—सफाई एवं स्वास्थ्य विभाग का सञ्चालन करता है ।
- ४—डिप्टी इन्स्पेक्टर—शिक्षा विभाग का मुख्य अधिकारी । इनके अतिरिक्त अनेक लिपिक (क्लर्क) एवं तपरासी होते हैं । इन्हें निर्धारित वेतन दिया जाता है ।

५—कार्यपद्धति—विभिन्न विभागों के लिए पृथक् पृथक् समितियाँ होती हैं जो अपने विभाग का कार्य करती हैं। बोर्ड इन कमेटियों के कार्यों का निरीक्षण करता है तथा आवश्यक विषयों का निर्णय करता है।

जिला बोर्ड के कार्य—

बोर्ड अपने क्षेत्र में जनहित के प्रायः सभी कार्य करता है। उसके मुख्य कार्यों की सूची इस प्रकार है।

- (१) सड़कों का निर्माण तथा मरम्मत कराना, पेड़ लगवाना तथा उसकी रक्षा करना।
- (२) प्रारम्भिक शिक्षा का प्रचार करना, जैसे प्रारम्भिक पाठशालाएँ जू० हाईस्कूल खोलना।
- (३) चिकित्सा और स्वास्थ्य का प्रबन्ध करना, चेचक, प्लेग आदि का टीका लगाना, पशु-चिकित्सालय की स्थापना करना।
- (४) बाजार, मेला, प्रदर्शनी आदि की व्यवस्था करना।
- (५) पीने के जल के प्रबन्ध के लिए तालाब या कुएँ खुदवाना, या उनकी मरम्मत करवाना।
- (६) काँजी हाउस (हानि पहुँचानेवाले पालतू जानवरों को रोक लेने का स्थान)
- (७) घाट, पुल और नाव आदि का प्रबन्ध करना।
- (८) सार्वजनिक सुभीते के अन्य कार्य।

इस प्रकार बोर्डों पर बहुत महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है।

आय के स्रोत—

- (१) भूमि पर लगान के अतिरिक्त प्राप्त महसूल।
- (२) सड़क, घाट, तालाब, वृक्ष की आमदनी, पाठशाला की फीस (शुल्क) आदि
- (३) काँजी हाउस की आमदनी।
- (४) बाजार, मेले, जुमाइश आदि से प्राप्त धून।
- (५) सरकारी ऋण या सहायता।

सरकारी नियन्त्रण—

जिले का कलक्टर बोर्ड की देखभाल करता है। इस सम्बन्ध में कलक्टर के बहुत अधिकार हैं। यह है कि वह बोर्ड के प्रस्ताव को यदि अहितक समझता है तो उसे रोक सकता है। बोर्ड द्वारा अधिकार का दुरुपयोग करने पर प्रान्तीय सरकार उसे भङ्ग कर सकती है।

नगरपालिका (म्युनिस्पल बोर्ड)

स्थानीय संस्थाओं का काम है कि नागरिक जीवन के प्राथमिक दायित्व और कर्तव्य का आप स्वयं पालन करें और उन सब लोगों को बताएँ जो नित्य आपके निकट सम्पर्क में आते हैं।

—सरदार पटेल

शहरों का विस्तार—

भारत की जन संख्या लगभग १२ प्रति शत मनुष्य नगरों में निवास करते हैं। आधुनिक उद्योगों की वृद्धि तथा ग्रामीण अवस्था की अवनति के कारण प्रायः नगरों की जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। इसलिए नगरों में स्थानाभाव हो रहा है। घनी आबादी के कारण गन्दगी बढ़ रही है। अतः हमारे देशवासी नागरिकता का महत्व नहीं समझ पाये हैं अतः नागरिक जीवन को आनन्दमय बनाने का प्रयास बहुत कम व्यक्ति करते हैं। नगरों का वास्तव रूप तो अवश्य आकर्षक है पर नगर जीवन अनेक दोषों से पूर्ण है। नगरपालिका जैसी संस्थाएँ इन दोषों का परिष्कार करके सच्ची नागरिकता की शिक्षा दे सकती हैं।

म्युनिस्पैलिटियों का संघटन—

प्रत्येक नगरपालिका की सीमा निर्धारित कर दी गयी है। इसके सभापति उपसभापति, सचिव (सेक्रेटरी) तथा सदस्यों का चुनाव चार वर्ष के बाद होता है। जिस प्रकार जिला बोर्ड के उम्मीदवारों की योग्यता होती है वैसी ही योग्यता नगरपालिका के उम्मीदवारों की होती है। जिला बोर्ड की ही भाँति नगरपालिका के चुनाव में वे व्यक्ति सम्मिलित नहीं हो सकते जो—

(१) सरकारी या नगरपालिका के कर्मचारी हों ।

(२) पागल, दिवालिया, या चुनाव के सम्बन्ध में दण्डित व्यक्ति हों ।

(३) जिन पर नगरपालिका का पावना बांधी है ।

(४) जो आचरण सम्बन्धी अपराधों के दोषी हों ।

२१ वर्ष से अधिक अवस्था के व्यक्ति चुनाव में मतदान कर सकते हैं । नगरपालिका की सीमा अनेक वार्डों में विभक्त रहती है । प्रत्येक वार्ड निर्वाचन क्षेत्र माना जाता है । वहाँ की जनसंख्या के आधार पर सदस्यों की संख्या निर्धारित की जाती है । कुछ समय के लिए अछूतों तथा अल्पसंख्यकों के लिए स्थान सुरक्षित कर दिये गये हैं । चुनाव संयुक्त प्रणाली द्वारा ही होता है । नये नियमों के अनुसार अब सभापति भी मत-दाताओं द्वारा प्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली से चुने जाते हैं । उप सभापति को सदस्य ही चुनते हैं । दो उप सभापतियों में से एक सीनियर होता है जो बड़ा समझा जाता है और दूसरा जूनियर होता है । इसका पद सीनियर से छोटा माना जाता है । ये सभी अवैतनिक पदाधिकारी होते हैं ।

इस के अतिरिक्त सचिव (सेक्रेटरी), कार्याधिकारी (एक्जिक्यूटिव अफसर) शिक्षा-सुपरिण्टेण्डेण्ट, जुर्गा सुपरिण्टेण्डेण्ट, स्वास्थ्याधिकारी (हेल्थ अफसर) जलकल सुपरिण्टेण्डेण्ट आदि वैतनिक पदाधिकारी होते हैं ।

म्युनिस्पल-बोर्ड के कार्य—

(१) सर्वसाधारण को सुविधा का प्रबन्ध करना—आवागमनके मार्गों का निर्माण, सुधार तथा विकास करना, अग्नि बुझाने की व्यवस्था करना जल-प्लावन, अकाल, संक्रामक रोग के संकट में जनता की सहायता करना, व्यापार एवं उद्योगधंधों की उन्नति के उपाय करना, नगर सुधार एवं विकास का प्रयत्न करना, मजदूरों के हितों तथा मनोरंजन के साधनों की व्यवस्था करना ।

(२) स्वास्थ्य रक्षा—गंदगी को दूर करना, संक्रामक रोगों की रोकथाम, चिकित्सालय खोलना, शुद्ध जल एवं स्वच्छ पदार्थों की प्राप्ति की व्यवस्था, शारीरिक उन्नति, व्यायाम, उद्यान आदि की व्यवस्था करना ।

(३) शिक्षा-प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था के लिए पाठशालाओं को खोलना, कला कौशल तथा उच्चशिक्षा का भी यथाशक्ति प्रबन्ध करना ।

(४) प्रकाश की व्यवस्था—ड्रामवे या छोटी रेलों की व्यवस्था में सहायता देना ।

कार्य पद्धति—

नगरपालिका कार्य को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए विभिन्न समितियों का संघटन करती है—उदाहरणार्थ (१) राजस्व (फाइनेन्स) समिति (२) शिक्षा समिति (३) स्वास्थ्य-समिति (४) निर्माण-कार्य समिति (पब्लिक-वर्क्स) (५) चुंगी-समिति (६) जलकल-समिति—इन समितियों का निर्माण सदस्यों द्वारा ही होता है । प्रत्येक समिति में एक सभापति होता है । एक समिति में प्रायः १० तक सदस्य होते हैं । कभी कभी सदस्यों के अतिरिक्त अन्य विशेषज्ञ भी समिति में रखे जाते हैं जिन्हें मिलाये हुए मनोनीत अतिरिक्त (को-आप्ट) सदस्य कहते हैं ।

आमदनी के साधन—

- (१) चुंगी अर्थात् नगरपालिका की सीमा में आनेवाले माल पर कर ।
- (२) मकानों और जलकल का कर ।
- (३) सवारियों जैसे मोटर, साइकिल, बग्घी, नाव का कर ।
- (४) नगरपालिका के भवनों तथा बाजारों का कर ।
- (५) यात्री-कर ।
- (६) म्युनिस्पल नगरपालिका के विद्यालयों का शुल्क ।
- (७) कांजी हाँस में प्राप्त धन ।
- (८) सरकारी सहायता या ऋण

सरकारी नियंत्रण—

नगर-पालिकाओं के आय-व्यय पर सरकार का पूर्ण नियंत्रण रहता है । इसके कार्यों की देख-रेख भी सरकार करती रहती है । यदि कार्य असन्तोषजनक होता है तो सरकार नगर-पालिका को भंग भी कर सकती है । ऐसी दशा में वह अपनी ओर से प्रशासक नियुक्त करती है ।

नगर-निगम-(कारपोरेशन)--

बड़े-बड़े नगरों में म्युनिस्पल कारपोरेशन, जिन्हें साधारणतः कारपोरेशन

कहते हैं, स्थापित हैं। इन्हें बड़ी नगर-पालिका ही समझना चाहिये। बम्बई, मद्रास तथा कलकत्ता में बहुत पहले से ही कारपोरेशन है। हमारे राज्य में बनारस, इलाहाबाद, आगरा, कानपुर तथा लखनऊ में नगर-निगमों की स्थापना का निर्णय हो चुका है। नगर पालिका तथा नगरनिगम में मुख्य अन्तर यह है कि निगमों के सदस्य केवल नीति निर्धारित करते हैं। निगम के कार्याधिकारी उसी के आधार पर कार्य का संचालन करते हैं। नगरपालिका में तो कमेटियों द्वारा प्रतिदिन के आय-व्यय का कार्य तथा नियुक्तियाँ आदि होती हैं पर निगम में यह कार्य कार्याधिकारी करता है। कार्याधिकारी प्रायः सरकारी कर्मचारी होता है। निगम के सभापति को मेयर तथा उप-सभापति को डिप्टी मेयर कहते हैं। इनका चुनाव प्रति वर्ष सदस्यों में से ही होता है। निगम के सदस्यों का चुनाव तीन वर्ष बाद होता है। चुनाव का ढंग पालिका के ही समान है। निगमों को पालिकाओं से अधिक अधिकार प्राप्त होते हैं। सरकार भी मनोरंजन कर आदि निगम को दे देती है।

छावनी पालिका—(कैण्टोमेण्ट बोर्ड—)

बड़े नगरों के जिस भाग में सेना रहती है उसका प्रबन्ध छावनी पालिका करती है। इसके कर्तव्य और अधिकार नगर-पालिका जैसे होते हैं। इसका सभापति सरकारी कर्मचारी होता है। इस पर अन्तिम नियन्त्रण सेना-विभाग का होता है।

इम्प्रोवमेण्ट ट्रस्ट—

नगर निर्माण में सुधार तथा उसका विकास करने के लिए इसकी स्थापना बड़े नगरों में होती है। इसके सदस्यों को राजकीय सरकार नगर पालिका तथा व्यापारिक संस्थाएँ मनोनीत करती हैं। इन सदस्यों का कार्य-काल तीन वर्ष होता है। इन्हीं सदस्यों में से सभापति चुना जाता है। इसमें एक चैतनिक, सेक्रेटरी तथा अन्य कर्मचारी नियुक्त किये जाते हैं। यह नगर को नयी योजना-नुसार बसाने तथा भवनों को हवादार एवं स्वास्थ्यप्रद बनाने का कार्य करता है।

पोर्ट ट्रस्ट—

समुद्र तट तथा बन्दरगाहों की व्यवस्था करता है। इसके कुछ सदस्य सरकार

द्वारा मनोनीत होते हैं। कुछ निगमों तथा वेम्बर आफ कामर्स (व्यापारिक संस्था) द्वारा चुने जाते हैं। इनके प्रबन्ध पर सरकार अधिक नियंत्रण रखती है।

उपसंहार—

स्थानीय शासन की संस्थाएँ हमें नागरिकता की शिक्षा देती हैं। इनमें कार्य करके हम उत्तरदायित्व के निर्वाह का अनुभव करते हैं। ये संस्थायें निःस्वार्थ सेवा तथा परोपकार की ओर प्रवृत्त करती हैं। इसलिए हमारा कर्तव्य है कि हम चुनाव में उन्हीं लोगों को अपना मत दें जो निःस्वार्थ सेवा, त्याग तथा उपकार की भावनाओं से ओत-प्रोत हों तभी हमारे उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है। यदि हम किसी विशेष प्रभाव में पड़कर अयोग्य व्यक्तियों को मत दें तो वे इन संस्थाओं को नष्ट करने तथा नागरिक जीवन को नरक तुल्य कष्टदायक बनाने में कुछ उठा न रखेंगे। अतः उत्तरदायित्व का निर्वाह करने वाले योग्य व्यक्तियों को ही संस्थाओं में प्रतिनिधि चुनना चाहिये।

अध्याय ४

जिले का शासन—

शासन—

किसी भी स्थान के निवासियों के जीवन को सुख तथा शान्तिमय बनाने के लिए व्यवस्था की आवश्यकता होती है। कहीं यह व्यवस्था किसी शक्तिशाली व्यक्ति द्वारा तथा कहीं जनता के प्रतिनिधियों द्वारा होती है। आजकल प्रायः ये ही दो प्रकार के संघटन हैं। यह संघटन राजनीतिक होता है। इसमें निश्चित सीमा तक ही मनुष्य स्वतन्त्र रहता है अन्यथा उन्हें इस व्यवस्था के नियमों का पालन करना पड़ता है। इन व्यवस्थाओं में से पहली को 'राजसत्तात्मक' तथा दूसरी को 'लोकतन्त्रात्मक' व्यवस्था कहते हैं। हमारे देश में इस समय लोकतन्त्रात्मक अथवा गणतन्त्रात्मक व्यवस्था है। यही व्यवस्था शासन कहलाती है। कार्य की अधिकता तथा उत्तम प्रबन्ध की दृष्टि से इस शासन व्यवस्था के दो भाग कर दिये गये हैं जिनका दर्शन आप यहाँ पढ़ेंगे।

(१) शासन सम्बन्धी विभाग—

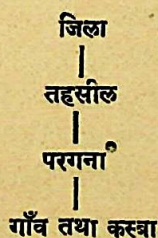
जिले के शासन को दो भागों में विभक्त किया गया है ।

- (१) वह भाग है जिसकी व्यवस्था राजकीय अधिकारियों के हाथ होती है । इस भाग के मुख्य अधिकारी जिलाधीश (कलक्टर), उप-जिलाधीश (डिप्टी कलक्टर), अतिरिक्त जिलाधीश (एडिशनल कलक्टर), तहसीलदार, पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट, नगर रक्षक (कोतवाल), थानेदार इत्यादि हैं ।
- (२) दूसरा भाग वह है जिसकी व्यवस्था जनता के हाथ में है । शासन के इस विभाग को हम 'स्थानीयशासन' कहते हैं । हमारे राज्य में स्थानीय शासन की प्रमुख संस्थाएँ नगरपालिका (म्युनिस्पल बोर्ड), जिला बोर्ड (जिला पालिका), नोटिफाइड एरिया, टाउन एरिया तथा ग्राम पंचायतें हैं । इनके सम्बन्ध में आप पिछले अध्याय में पढ़ चुके हैं ।

(२) जिले के राजकीय अधिकारी तथा उनके कर्तव्य—

हमारे राज्य का प्रत्येक जिला अनेक भागों में विभक्त है । प्रत्येक भाग को तहसील कहते हैं । इसका अधिकारी तहसीलदार कहलाता है । तहसील के भी अनेक भाग किये गये हैं जिन्हें परगना कहते हैं । परगने का अधिकारी परगना हाकिम कहलाता है ।

प्रत्येक परगने में कुछ गाँव एवं कस्बे होते हैं । नीचे के चित्र को ध्यान से देखिये ।



कार्य की दृष्टि से हम जिले के इन अधिकारियों को अनेक भागों में बाँट सकते हैं क्योंकि इनमें विभिन्न अधिकारियों को अलग अलग कार्य सौंपे जाते हैं ।

(१) शासन संबन्धी अधिकारी—

जिलाधीश (कलक्टर) जिले का सबसे बड़ा अधिकारी है । जिले की शान्ति एवं सुव्यवस्था का पूरा उत्तरदायित्व इसी अधिकारी पर होता है । शेष सभी अधिकारी इसकी आज्ञाओं का पालन करते हैं तथा शासनकार्य में उसकी सहायता करते हैं । कहीं कहीं इन्हें डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट अथवा डिप्टी कमिश्नर भी कहते हैं । डिप्टी कलक्टर, तहसीलदार, हाकिम परगना आदि कलक्टर की सहायता करते हैं ।

(२) पुलिस के अफसर—

जिले का सबसे बड़ा पुलिस अधिकारी पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट कहलाता है । बड़े बड़े नगरों की व्यवस्था के लिए एक या दो नगर सुपरिण्टेण्डेण्ट रहते हैं । इनके अधिकार में शहरकोतवाल (नगर-रक्षक) होता है । पुलिस विभाग भी अपनी सुविधा के लिए जिले को अनेक भागों में विभक्त करता है । इन भागों को थाना या हल्का कहते हैं । प्रत्येक हल्के में एक या दो थानेदार होते हैं । थानेदारों के अधीन बहुत से सिपाही होते हैं । इनके अतिरिक्त गुप्त रूप से घटनाओं का पता लगाने के लिए गुप्तचर (खुफिया पुलिस) होते हैं । विशेष स्थिति में शान्ति एवं व्यवस्था के लिए सशस्त्र पुलिस भी रखी जाती है । रेलवे सीमा के अन्दर शान्ति एवं सुरक्षा के लिए रेलवे पुलिस का संघटन किया गया है । ग्राम का विस्तार नगर की अपेक्षा अधिक होता है पर जनसंख्या नगर की अपेक्षा कम होती है । इसलिए वहाँ शान्तिभंग की सम्भावना नगर इतनी नहीं रहती । यही कारण है कि वहाँ पुलिस की संख्या इतनी अधिक नहीं रखी जाती । वहाँ थानों में पुलिस रहते हैं । पर गाँवों में चौकीदार नियुक्त किये जाते हैं, जो अपने गाँव का समाचार थानेदार को देते रहते हैं ।

पुलिस विभाग का उत्तरदायित्व बहुत बड़ा है । इस विभाग के लोग अपनी कर्तव्य परायणता एवं सच्चाई से देश की सच्ची सेवा कर सकते हैं ।

(३) जिले का माल सम्बन्धी (राजस्व) अधिकारी—

जिलाधीश जिले का सबसे बड़ा माली अफसर है । वह अपने क्षेत्र की लगातार नज़र रखता है । प्रत्येक जिले में कई तहसीलदार उसकी सहायता के

लिए रखे जाते हैं। तहसीलदार की सहायता के लिए नम्बरदार तथा अमीन रखे जाते हैं।

कागज पत्रों को तैयार करने के लिए कानूंगो तथा लेखपाल रखे जाते हैं। कानूंगो के अधीन एक परगना तथा लेखपाल के अधीन एक गाँव रहता है। ये अधिकारी भूमि के स्वामियों तथा खेत के फसलों का पूरा व्योरा अपने पास रखते हैं। किसी प्रकार का परिवर्तन होने पर वे उस व्योरे में संशोधन कर लेते हैं।

(४) जिला न्यायालय विभाग के अधिकारी—

मुकदमे दो प्रकार के होते हैं।

(१) फौजदारी—वे मुकदमें हैं जिनमें मारपीट आदि का अभियोग चलता है।

(२) दीवानी मुकदमें—वे हैं जिसमें धनसम्बन्धी श्रगद्धों पर विचार होता है। जिले का फौजदारी का सबसे बड़ा न्यायाधीश 'सेशन जज' कहलाता है। वह दीवानी का भी सबसे बड़ा न्यायाधीश होता है। दीवानी मुकदमें के मामले में उसे डिस्ट्रिक्ट जज की सलाह दी जाती है।

सेशन जज के आधीन कलक्टर, डिप्टी कलक्टर, तहसीलदार, अवैतनिक मजिस्ट्रेट की फौजदारी अदालतें कार्य करती हैं।

जिले के अधिकारियों का कार्य स्पष्ट रूप से विभाजित नहीं हैं। इसलिए एक ही अधिकारी को शासन तथा न्याय दोनों कार्य करने पड़ते हैं। जैसे कलक्टर को ही ले लीजिये। वह शासन भी करता है और न्याय का भी काम करता है। वास्तव में शासन, एवं-न्याय विभाग तथा (विन) नियम (विधान) बनाने वाली सभाएँ सब का कार्य अलग-अलग होना चाहिये।

(५) सिविलसजन—जिले के अस्पतालों का सबसे बड़ा अधिकारी होता है। इसकी सहायता के लिए अनेक मेडिकल अधिकारी (चिकित्सक) होते हैं।

(६) एक्जक्यूटिव इंजीनियर—सार्वजनिक सुविधा के लिए निर्माण-कार्य जिले के एक्जिक्यूटिव इंजीनियर के अधिकार में होता है। वह जिले के सार्वजनिक सड़कों, भवनों, नहरों, राजकीय भवनों तथा पुल आदि की देखभाल तथा निर्माण करता है।

(७) पोस्ट मास्टर जनरल—डिक एवं तार विभाग का सबसे बड़ा अधिकारी है।

(८) जेलर—जेल की व्यवस्था जेलर के अधीन है। वहाँ का पूरा उत्तर-दायित्व उसी पर रहता है।

(४) व्यवसाय—

जिले का मुख्य व्यवसाय कृषि है। जनसंख्या का अधिकांश इसी व्यवसाय में लगा है। किसान अपने माल को मण्डी या बाजारों में ले जाकर बेचते हैं। बड़े बड़े व्यापारी इन अनाजों को खरीदते हैं। वे फिर उपभोक्ताओं के हाथ बेचते हैं। कुछ बड़े बड़े व्यापारी हैं जो जिले के बाहर के बड़े बड़े बाजारों से गन्ना मँगा कर छोटे व्यापारियों को देते हैं। जिले के प्रायः सभी भाग में ईस्त्र से गुड़ तैयार किया जाता है। तेल का व्यवसाय भी होता है। प्रायः लोग आयरल मिलों में तेल पेरते हैं। पर कुछ स्थानों तथा ग्रामीण क्षेत्रों में देशी कोल्हू से भी तेल पेटा जाता है। ग्रामीण जुलाहे कपड़े बुनते हैं। जिले में एक कपड़े की मिल 'बनारस काटन एण्ड सिल्क मिल्स' के नाम से कार्य करती है। इसमें साधारण ढंग के कपड़े तैयार होते हैं। इस मिल का कार्य प्रायः सुचारु रूप से नहीं चलता। बनारस कला का नगर है। अतः बनारस शहर तथा आस-पास के ग्रामों में बनारसी वस्त्र बुने जाते हैं। इसे प्रायः जुलाहे बुनकर तैयार करते हैं। बनारस में इन रेशमी वस्त्रों का बहुत बड़ा व्यवसाय है। नगर के लगभग ७५ प्रतिशत व्यक्ति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस व्यवसाय से सम्बन्धित कार्य में लगे रहते हैं। बनारस में जर्दा-सुर्ती तथा तम्बाकू का भी कारवार होता है। यहाँ का तम्बाकू तथा जर्दा देश के सभी बड़े नगरों को भेजा जाता है। बनारस में पीतल के वर्तन का बहुत बड़ा व्यापार है। लकड़ी के खिलौने भी तैयार होते हैं। रामनगर में ताले बनाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त लोग सरकारी या जनता की नौकरी करते हैं। कुछ लोग विदेशी सामानों का व्यापार करते हैं। काशी के तीर्थस्थान होने के कारण कुछ लोग पंढारिणी अथवा यात्रियों के दान द्वारा अपनी जीविका चलाते हैं।

(५) पुलिस—

प्रत्येक राज्य में जनता के प्राण-धन की रक्षा के लिए तथा शान्ति बनाये रखने के लिए पुलिस की आवश्यकता होती है। हमारे देश में भी पुलिस द्वारा

यह कार्य सम्पादित होता है। जिले में पुलिस का सबसे बड़ा अधिकारी 'पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट' होता है। उसके आधीन नगर तथा ग्राम के सुपरिण्टेण्डेण्ट काम करते हैं। नगर में 'डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट' होते हैं जिन्हें नगर-रक्षक (कोतवाल) कहते हैं। कोतवाल के नीचे थानेदार होते हैं। प्रत्येक थाने का अधिकारी थानेदार कहा जाता है। थानेदार के आधीन अनेक सिपाही रहते हैं। ग्रामों में थानेदार की सहायता के लिए चौकीदार या मुखिया नियुक्त किये जाते हैं जो अपने क्षेत्र का समाचार थानेदार को देते हैं। थानेदार अपने क्षेत्र का सर्वेसर्वा होता है।

पुलिस का कर्तव्य है कि वह अपराधियों को पकड़ कर दण्ड दिलावे। जनता के प्राण-धन की रक्षा करे। मेलों और उत्सवों के समय जनता की सुविधा की व्यवस्था करे। वह कलक्टर की आज्ञानुसार अपराधियों को अदालत में पेश करे तथा नगर के यातायात को सुव्यवस्थित रूप से चलाने का प्रबन्ध करे।

(६) शिक्षा-विभाग—

जनता की शिक्षा के हेतु शिक्षा-विभाग की स्थापना की गयी है। इस विभाग का अधिकारी 'जिला विद्यालय निरीक्षक' (डिस्ट्रिक्ट इंस्पेक्टर आफ स्कूल्स) होता है। उसके आधीन अनेक डिप्टी इंस्पेक्टर होते हैं जो विद्यालयों का निरीक्षण करते हैं। ये अधिकारी जिले के इण्टर कालेज, हायरसेकेण्डरी स्कूल, जूनियर हाईस्कूल तथा प्राइमरी स्कूलों का निरीक्षण करते रहते हैं। समय-समय पर वे शिक्षा-संचालक या उप-शिक्षा संचालक के आदेशानुसार इन विद्यालयों के प्रधानाध्यपकों को निर्देश देते तथा पथप्रदर्शन करते हैं। इण्टर कालेज या हायर सेकेण्डरी स्कूल जनता द्वारा स्वतन्त्र रूप से स्थापित किये जाते हैं पर उन्हें सरकार से मान्यता प्राप्त करनी पड़ती है। सरकार इन को धन की सहायता भी देती है। कहीं कहीं सरकार की ओर से राजकीय शिक्षा संस्थाएँ भी खोली जाती हैं जिसका सारा व्यय सरकार देती है। ग्रामों में प्रारम्भिक पाठशालाएँ तथा जूनियर हाईस्कूल जिला बोर्ड द्वारा संचालित होते हैं। यह कार्य नगरों में नगरपालिकाएँ करती हैं। जिले में प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य

कूरने की योजना के अनुसार धीरे धीरे अनेक स्थानों पर अनिवार्य-शिक्षा कर दी गयी है। आशा है निकट भविष्य में ही सारे जिले में या यों कह सकते हैं कि सारे राज्य में अनिवार्य-प्रारंभिक शिक्षा योजना चालू कर दी जायगी। प्रायः बड़े बड़े विद्यालयों में प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था सरकार द्वारा की गयी है जिले में अनेक कला-शिक्षा-विद्यालय (टेकनिकल स्कूल) भी खुल गये हैं जैसे बटुक प्रसाद खत्री इण्डस्ट्रियल स्कूल, राजकीय वीविंग इन्स्टीट्यूट, म्युनिस्पल लेदर वर्किंग स्कूल आदि।

अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए भी अनेक ट्रेनिंग स्कूल हैं। जैसे महाबोधि ट्रेनिंग स्कूल, कटिंग मेमोरियल ट्रेनिंग स्कूल अजमतगढ़ ट्रेनिंग स्कूल आदि। यह विभाग जिले की शिक्षा की व्यवस्था करता है तथा सरकारी नीति के अनुसार शिक्षा का संचालन तथा नियंत्रण करता है।

(७) कृषि विभाग—

कृषि विभाग का मुख्य कार्य कृषि की उन्नति करना है। इस विभाग के अधिकारी कृषकों से सम्पर्क स्थापित कर उन्हें आजकल के वैज्ञानिक ढंग के अनुसार कृषि करने के लिए प्रेरित करते हैं। वे कृषकों को इस बात की शिक्षा देते हैं कि नये औजारों तथा खादों की सहायता से खेती की उन्नति किस प्रकार की जाती है। वे स्वयं खेती करके कृषकों के सामने आदर्श रखते हैं जिससे उनको प्रेरणा मिले तथा वे नये प्रयोगों को करने के लिए उत्साहित हों। ये किसानों को अच्छे बीजों की पहिचान तथा बोने का ढंग भी बतलाते हैं।

(८) सिंचाई विभाग—

भारत का कृषक प्रायः वर्षा पर निर्भर रहता है। यदि वर्षा समय से हुई तब तो उसे अपनी खेती में अत्यधिक सफलता मिलती है। पर सर्वदा ऐसा नहीं होता। कभी कभी वर्षा बहुत कम होती है। ऐसी स्थिति में उसकी फसल नष्ट हो जाती है अथवा अधिक वर्षा होने के कारण बीज सड़ जाते हैं। दोनों ही अवस्थाएँ भयावह हैं। इसलिए सरकार ने सिंचाई का विभाग खोल रखा है। इस विभाग के द्वारा नहरों का निर्माण होता है। नदियों में बाँध बाँधकर पानी

एकत्र कर लिया जाता है तथा नहरों के द्वारा इच्छित स्थान पर जल पहुँचा दिया जाता है। इस प्रकार गैरी के सूखे दिनों में भी सिंचाई के लिए पर्याप्त जल मिल जाता है। यदि खेत में पानी अधिक बरस गया तो इनके ही द्वारा वह निकाल भी दिया जा सकता है। जहाँ सम्भव होता है वहाँ नहरों द्वारा सिंचाई की सुविधा प्रदान की जाती है। जिन स्थानों पर नहरों की सुविधा नहीं दी जा सकती वहाँ के लिए ट्र्यूव-वेल की व्यवस्था की जाती है। इस के द्वारा कुँओं की भाँति जमीन से पानी निकालकर सिंचाई की जाती है। इन सुविधाओं के द्वारा किसान थोड़े व्यय एवं समय में अपने खेतों में यथा आवश्यकता जल दे सकता है।

(९) सहकारी विभाग

ब्रिटिश शासन में ग्रामों की अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी। पारस्परिक द्वेष, ईर्ष्या तथा स्वार्थपरता ने जीवन को कष्टमय बना दिया था। एक ओर तो यह दुर्दशा थी, दूसरी ओर महाजन कृषकों का शोषण करते थे। वे धन देकर उनसे अधिकाधिक व्याज वसूल करते थे। निर्धन कृषक जब एक बार उनके चंगुल में फँस जाता तो उसका निकलना असम्भव हो जाता। महाजनों के ऋण चुकाने में ही उसकी कमाई का अधिकांश स्वाहा हो जाता था। सरकार का ध्यान इस दुर्दशा की ओर गया। उसने जनता में परस्पर मेल तथा प्रेम से कार्य करने की टेव डालने के लिए तथा किसानों को ऋण-मुक्त करने के लिए सहकारी-विभाग की स्थापना की। इस विभाग द्वारा छोटी छोटी सहकारी समितियाँ स्थापित की गयीं। ये समितियाँ अनेक प्रकार के जनहित के काम करती हैं। जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेक वस्तुओं की दुकान खोल देती हैं। ऐसी संस्थाएँ अपना लाभ बहुत कम रखती हैं जिससे बाजार की अपेक्षा वस्तुएँ कम मूल्य में उपलब्ध हो सकें। समितियाँ द्वारा कृषकों को सस्ते वस्त्र, बीज, खाद खेती के औजार आदि मिल जाते हैं। ये समितियाँ सहकारी बैंकों द्वारा कम व्याज पर ग्रामीणों को ऋण देती हैं। इस प्रकार वे महाजनों के गंजे में पड़ने से बच जाते हैं। सहकारी विभाग के कार्यों में सभी लोग सहयोग

करते हैं इसलिए वे कार्य को बड़े मनोयोग एवं परिश्रम से करते हैं। इसके द्वारा जनता में आत्मबल एवं विश्वास की भावना जागृत होती है।

(१०) आरोग्य तथा जनस्वास्थ्य—

सभी सुख एवं सुविधाओं के रहने पर भी हमारा आरोग्य रहना अत्यन्त आवश्यक है। हमारे गाँवों में शिक्षा का अभाव है। इसलिए प्रायः आरोग्यता की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। ग्राम-निवासी स्वच्छता का ध्यान नहीं रखते। वे न तो स्वयं सफाई से रहते हैं और न अपने घर अथवा पास पड़ोस को ही स्वच्छ रखने का प्रयास करते हैं। इसका फल यह होता है कि वे नाना प्रकार के रोगों के शिकार होते हैं। कुछ लोग यह भी कह सकते हैं कि ग्रामों की निर्धनता उन्हें गन्दगी से रहने को बाध्य करती है और कुछ अंशों तक यह यथार्थ भी है; पर प्रयत्न करने पर वे सफाई की व्यवस्था कर सकते हैं। आस-पास की सफाई, मकान की सफाई तथा शरीर की सफाई के लिए उन्हें कुछ व्यय न करना पड़ेगा।

जनता के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में राज्य का महान उत्तरदायित्व है। इसीलिए राज्य की ओर से भी इसकी व्यवस्था की जाती है। इसके लिए राज्य-सरकार में स्वास्थ्य-मन्त्री रहता है। इसके आदेश एवं निर्धारित नीति के अनुसार जिले का स्वास्थ्याधिकारी सब कार्य करता है। ये कार्य दो प्रकार के होते हैं।

(१) सफाई-सम्बन्धी तथा रोग निरोधक कार्य।

(२) चिकित्सा-सम्बन्धी अथवा रोगोपचार।

सफाई का कार्य जिले में स्वास्थ्य-विभाग करता है। ग्रामों में जिला बोर्ड तथा नगरों में नगरपालिकाएँ ये कार्य करती हैं। रोगों के फैलने पर उनके रोक-थाम का उपाय तथा रोगाक्रान्त व्यक्तियों का चिकित्सा कार्य भी यही विभाग करता है। इस विभाग का कार्य कुएँ की सफाई कराना, टीका लगाना, आरोग्यता के नियम समझाना आदि है। इस विभाग द्वारा अनेक स्थानों पर अस्पताल तथा औषधालय खोले जाते हैं।

(११) लोकसेवी संस्थाएं—

ग्राम सुधार विभाग—

ग्रामीण जनता की उन्नति के लिए सरकार ने ग्रामसुधार विभाग भी स्थापित किया है। यह विभाग ग्रामीणों के जीवन-स्तर को उठाने का प्रयत्न करता है। यह देहातों में समितियाँ स्थापित करता है। ये समितियाँ खेती के लिए अच्छे बीज बाँटती हैं, गाँव की सड़ी पत्ती, गोबर तथा कूड़ा एकत्र करके खाद बनाने की व्यवस्था करती हैं। इनके द्वारा कला-कौशल की शिक्षा तथा प्रौढ़-शिक्षा की व्यवस्था होती है। ये गाँव की सड़कें, गली आदि का सुधार करके उसे आदर्श ग्राम बनाने की चेष्टा करती हैं।

डाकखाना तथा तारघर—

दूरस्थ स्थानों में सन्देश अथवा धन भेजने के लिए प्राचीनकाल में इतनी सस्ती व्यवस्था न थी। कोई व्यक्ति यदि समाचार भेजना चाहता था तो उसे एक हरकारे को व्यक्तिगत रूप से भेजना पड़ता था इसमें धन और समय दोनों नष्ट होते थे। पर अब तो इन सेवाओं के लिए डाकघर की व्यवस्था है। तीन पैसे के कार्ड पर लिख कर हम अपना सन्देश देश के किसी कोने में भेज सकते हैं। यदि हम अपने सन्देश को शीघ्र भेजना चाहें तो उसे तार द्वारा भेज सकते हैं। डाकखाने द्वारा हम केवल सन्देश ही नहीं धन तथा छोटी वस्तुएँ भी भेज सकते हैं। अतिरिक्त डाकव्यय देकर विश्व के किसी भाग में पत्र भेजने की सुविधा प्राप्त है।

लोकसेवा के अन्य सरकारी कार्य—

स्थायी रूप से लोकसेवा का कार्य करने के अतिरिक्त सरकार को आकस्मिक घटनाओं के अवसरों पर भी यह कार्य करना पड़ता है। ऐसे अवसरों पर सरकार अस्थायी रूप से संस्थाएं स्थापित करती है और विपत्ति की समाप्ति पर उन्हें वन्द कर देती है। जैसे—महामारी, भूडोल, जलप्लावन (बाढ़), अकाल, दंगे आदि के अवसर पर सरकार को अनेक काम करने पड़ते हैं। एक ओर वह पीड़ितों की चिकित्सा, भोजन, वस्त्र तथा निवास की व्यवस्था करती है तो दूसरी ओर मृत व्यक्तियों के दाह संस्कार का प्रबन्ध करना पड़ता है।

- अकाल के समय किसानों की लगान क्षमा करना तथा उन्हें तकावी के रूप में सहायता देना आवश्यक हो जाता है।

सरकारी संस्थाओं के अतिरिक्त जनता द्वारा संचालित अनेक लोकसेवी संस्थाएं हैं।

(१) कांग्रेस—

यह देश की शक्तिशालिनी संस्था है। इसने बड़े संघर्ष के पश्चात् भारत को स्वतंत्र किया है। इसलिए इसका महत्व अधिक है। इस संस्था में पं० मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपत राय, लोकमान्य तिलक, पं० मदन मोहन मालवीय, महात्मा गांधी, सरदार पटेल आदि नेताओं ने कार्य किया है। यह सर्वाधिक जागरूक संस्था है। इसने ब्रिटिश शासन से दृढ़ मोर्चा लिया। यह दमन तथा अत्याचार की शिकार हुई। इसके अनेक सदस्यों ने जेल-यात्रा की। कितने ही व्यक्तियों ने अपने प्राणों की आहुति दी। किन्तु वे अपने कर्तव्य-पथ से विचलित नहीं हुए। अन्त में विवश होकर ब्रिटिश सरकार ने १५ अगस्त सन् १९४७ को भारत की स्वतंत्रता की घोषणा की। तभी से देश में कांग्रेस का शासन है। इस शासन में देश दिन प्रतिदिन उन्नति कर रहा है। अंग्रेजों ने भारत छोड़ने के पहले इसे सभी प्रकार से जर्जरित कर दिया था। पर कांग्रेस का ही काम है कि देश में अव्यवस्था एवं अराजकता का नाम भी नहीं मिलता इतना ही नहीं बल्कि अपनी सफल नीति से इसने देशी राज्यों को भी भारतीय संघ में सम्मिलित कर देश को सुदृढ़ बना दिया है। आशा है यह संस्था पूर्ण त्याग एवं तपस्या को ही आदर्श बना कर देश को प्राचीन गौरव के पद पर आसीन करेगी। राजनीतिक कार्यों के अतिरिक्त कांग्रेस ने समाज सुधार का भी कार्य किया है, जैसे अछूतोंद्वारा, मद्य निषेध। अन्त में यह कह देना परम आवश्यक है कि कांग्रेस ने देश के पिछड़े वर्ग को उठाने का कार्य भी किया है। अकाल, महामारी तथा बाढ़ के समय यह जनता की सहायता करती है।

(२) आर्यसमाज—

• इसके संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती थे। इन्होंने ही सर्वप्रथम स्त्रीराज्य का स्वप्न देखा था। महर्षि ने भारतीय आदर्शों के अनुकूल सभी प्रकार के सुवि

सुधार का आन्दोलन प्रारम्भ किया ? आज हम देश में जो धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक जागृति देखते हैं उसका सारा श्रेय महर्षि दयानन्द को ही देना चाहिये । आज से लगभग ५०-६० वर्ष पूर्व भारत भर में आर्यसमाज ने बहुत व्यापक आन्दोलन एवं सुधार का कार्य किया । पर कांग्रेस के आन्दोलन के शक्तिशाली होने पर यह संस्था राजनीति को छोड़ कर शिक्षा सुधार तथा लोक-सेवा का कार्य कर रही है । आज भी इस संस्था का कार्य सुचारु रूप से चल रहा है ।

हिन्दू सभा—

हिन्दुओं के संघटन तथा राजनीतिक हितों की रक्षा के लिए हिन्दू सभा प्रयत्नशील है इसमें भी भाई परमानन्द तथा श्री सावरकर जैसे व्यक्तियों ने कार्य किया है । इस संस्था द्वारा भी जन-सेवा का कार्य हो रहा है ।

इन के अतिरिक्त समाजवादी दल, कम्युनिस्ट दल, रामराज्य परिषद् आदि संस्थाएँ हैं । ये संस्थाएँ राजनीतिक हैं । इन का उद्देश्य राजनीतिक अधिकारों की रक्षा तथा जनता को सुखी एवं समृद्ध बनाने की चेष्टा करना है ।

हरिजन सुधार-समिति, हरिजन-संघ आदि संस्थाओं के द्वारा अछूतों का कार्य हो रहा है ।

सेवासमिति—

इस संस्था का मुख्य उद्देश्य जनता की सेवा करना है । मेलों तथा पर्वों के अवसर पर यह यात्रियों की सुविधा की व्यवस्था करती है । बीमारी, बाढ़ तथा अकाल के समय यह जनता की सहायता एवं सेवा करती है । वैसे तो सभी संस्थाएँ ऐसे अवसर पर उदारता पूर्वक सब की सहायता एवं सेवा करती हैं ।

व्यवसायिक संस्थाएँ—

विभिन्न व्यवसाय करने वाले तथा कारीगरों की समितियाँ भी अनेक हैं जो अपने वर्ग के कर्मचारियों की सहायता तथा संकट के समय उनकी रक्षा करती हैं । वे अपने सदस्यों के हितों के लिए स्तब्ध करती हैं तथा उन्हें अधिकाधिक सुविधा दिलाने का प्रयत्न करती हैं ।

बैंक—

बैंक के द्वारा धन का लेन देन होता है। ये बैंक प्रायः शहरों एवं बड़े कस्बों में खोले जाते हैं। ग्रामों में कोऑपरेटिव बैंक हैं जो थोड़े व्याज पर ऋण देते हैं। बैंकों के द्वारा लाखों रुपये का लेन-देन सरलता पूर्वक होता है। इससे व्यापार में बड़ी सहायता मिलती है। बैंक द्वारा कारबार करने से बिना एक पैसा नगद दिये भी हम चेकों द्वारा लेन-देन करते हैं। इससे अनेक कठिनाइयाँ तथा असुविधाएँ दूर हो जाती हैं। लोग अपनी आय बैंकों में जमा कर देते हैं। इस प्रकार रुपये के जोखिम से बच जाते हैं। यह धन व्यापार आदि में गतिशील रहता है और राष्ट्र के उपभोग में आता है। यदि यह धन गाड़ कर रखा रहे या तिजोरी में बंद रहे तो उसका उपयोग नहीं हो सकता। केवल व्यक्तिगत कार्य में अवसर विशेष पर ही व्यय होता है पर बैंक के द्वारा यह सदैव कारबार में लगा रहता है। इससे देश के व्यापार तथा कलाकौशल में उन्नति होती है।

अध्याय ५

प्रादेशिक तथा केन्द्रीयशासन का सामान्य परिचय

राज्यों का शासन-प्रबन्ध

१५ अगस्त सन् १९४७ को भारतवर्ष को स्वतन्त्रता मिली। पर ब्रिटिश काल की शासन-प्रणाली सहसा बदली नहीं जा सकती थी। इसलिए शासन की रूपरेखा वैसी ही रही। सन् १९४६ में ही विधानपरिषद् का संघटन किया गया था। इस परिषद् को स्वतन्त्र भारत के विधान बनाने का कार्य सौंपा गया था। पर यह कार्य इतना सरल नहीं था कि एक वर्ष में पूर्ण हो सके। इसके निर्माण में लगभग ३ वर्ष लग गये। इस बीच में ब्रिटिश शासन के ढाँचे पर ही शासन कार्य चल रहा था। २६ जनवरी सन् १९५० को स्वतन्त्र भारत का नव निर्मित विधान लागू किया गया। उसी विधान के अनुसार १९५१ के प्रारम्भ में सारे देश में निर्वाचन हुआ। इस चुनाव के अनन्तर

राज्यों और केन्द्र में नयी सरकारें बनीं। इस अध्याय में इन सरकारों के निर्माण की विधि तथा शासन चलाने के ढङ्ग का वर्णन किया जायगा। इसके पूर्व हमें अपने देश के विषय में कुछ आवश्यक बातें जान लेनी चाहिये।

हमारा देश अनेक बड़े बड़े भागों में विभक्त है। ब्रिटिश काल में हम इन्हें 'प्रान्त' कहते थे पर अब इन्हें 'राज्य' कहा जाता है। इन राज्यों में अधिकांश तो पहले ही के हैं जैसे बङ्गाल, मद्रास, बम्बई, उत्तर प्रदेश, विहार, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, आसाम और पञ्जाब आदि। इन राज्यों के अतिरिक्त कई राज्य ऐसे हैं जो देशी रियासतों को मिला कर बनाये गये हैं। ब्रिटिश शासन काल में अनेक देशी राजा अपने रियासतों के शासक थे। वे सभी कुछ बातों को छोड़ कर ब्रिटिश शासन के अधीन थे। स्वन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् ये सभी राज्य भारतीय संघ में मिला लिये गये। वहाँ का शासन जनता के हाथ में सौंप दिया गया। आस पास की रियासतों को मिला कर एक राज्य बना दिया गया। ऐसे राज्य मुख्यतः राजस्थान, मध्यभारत, हैदराबाद, मैसूर, ट्रावनकोर, कोचीन, पटियाला-राज्य-संघ, सौराष्ट्र, विन्ध्यप्रदेश आदि हैं। यद्यपि इनका शासन पृथक् पृथक् है पर ये सभी भारतीय गणराज्य के अन्तर्गत हैं। ये सभी राज्य केन्द्रीय सरकार के नियमों का पालन करते हैं। अनेक शताब्दियों पश्चात् इस प्रकार की एकता भारत में स्थापित हुई है। इस पर हम सबको गर्व है।

राज्यपाल (गवर्नर)—

राज्य का प्रधान शासक राज्यपाल है। अंग्रेजी शासन के प्रारम्भ से ही बड़े बड़े प्रान्तों में गवर्नरों की नियुक्ति होती थी। इसलिए यह पद बहुत प्राचीन है। उस समय गवर्नरों की सहायता के लिए सलाहकारों की एक कौन्सिल होती थी। गवर्नर को बहुत बड़े अधिकार प्राप्त थे। यह कौन्सिल केवल सलाह देती थी। उस सलाह को मानने या न मानने के लिये गवर्नर स्वतंत्र था। वह अपने विशेषाधिकार से कौन्सिल के निर्णयों के विरुद्ध भी कार्य कर सकता था। पर अब ऐसी शक्ति उसे प्राप्त नहीं है।

गवर्नर की नियुक्ति—

ब्रिटिश शासन में इस पद पर प्रायः अंग्रेज ही नियुक्त किये जाते थे क्योंकि यह पद अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। इस पद पर कोई अनुभवी और सुयोग्य व्यक्ति पाँच वर्ष के लिए नियुक्त किया जाता था। नये विधान के अनुसार भारत का राष्ट्रपति गवर्नर की नियुक्ति करता है और वही उसे अपने पद से हटा भी सकता है। गवर्नर का कार्यकाल अब भी पाँच वर्ष ही रखा गया है। इस पद पर वे ही व्यक्ति नियुक्त हो सकते हैं जिनमें निम्नलिखित योग्यताएँ हों।

- (१) राज्यपाल भारत का नागरिक हो।
- (२) नियुक्ति के समय वह ३५ वर्ष से कम आयु का न हो।
- (३) कोई सरकारी कर्मचारी इस पद पर नियुक्त नहीं किया जा सकता।
- (४) नियुक्ति के बाद उसे किसी भी धारासभा की सदस्यता से वञ्चित होना पड़ेगा।
- (५) वह अन्य कोई लाभ का पद न ग्रहण करेगा।

राज्यपाल के कर्तव्य और अधिकार—

राज्यपाल को ब्रिटिश शासन में बहुत व्यापक अधिकार प्राप्त थे। वह धारासभाओं के निर्णय तथा मन्त्रियों के विचारों के विरुद्ध कार्य कर सकता था। यद्यपि सन् १९३५ के विधान में शासन सम्बन्धी कुछ अधिकार मन्त्रिमण्डल को सौंपे गये थे पर गवर्नर अपने विशेष अधिकार से मन्त्रिमण्डल के निर्णयों की अवहेलना कर सकता था। वह अपने प्रान्त का पूर्ण स्वामी था। प्रत्येक विभाग पर उसका पूर्ण नियन्त्रण था। नये विधान में गवर्नर के अधिकारों में बहुत बड़े परिवर्तन कर दिये गये हैं। पहले ही की भाँति वह अपने राज्य का प्रधान शासक है और उसी के नाम से राज्य का शासन चलाता है। पर अब वह शासन में मनमानी हस्तक्षेप नहीं कर सकता। यदि वह मन्त्रिमण्डल की अवहेलना करे तो मन्त्रिमण्डल त्यागपत्र दे सकता है। इस स्थिति में राज्यपाल दूसरा मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए धारासभा के किसी सदस्य को आमंत्रित करेगा। पर वह सफल न होगा क्योंकि धारासभा का बहुमत उस मन्त्रि-

मण्डल के पक्ष में रहेगा। आसधारण परिस्थिति में वह सभा बुलाने को स्वतन्त्र है। राज्यपाल राज्य की शासन सुचारु रूप से चलाने के लिए नियम बना सकता है। वह मन्त्रियों के कार्य का विभाजन भी करता है। जब राज्य में मन्त्रिमण्डल बनाना होगा तो राज्यपाल धारा-सभा के बहुसंख्यक दल के नेता को मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए आमन्त्रित करेगा। यही व्यक्ति राज्य का मुख्य-मन्त्री होगा। अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति मुख्यमन्त्री के परामर्श से राज्यपाल करता है। इसके अतिरिक्त वह राज्य के कानूनी सलाहकार तथा आय-व्यय निरीक्षक की नियुक्ति करता है। मुख्यमन्त्री का यह कर्तव्य है कि वह समय समय पर शासन-सम्बन्धी सूचना राज्यपाल को देता रहे। राज्यपाल को अधिकार है कि वह मन्त्री से शासन सम्बन्धी आवश्यक सूचना माँग सके।

संकटकाल में राज्यपाल विशेष आज्ञा (आर्डिनेन्स) निकाल सकता है। यदि कोई नियम राज्य के लिए लागू करना आवश्यक हो और उस समय राज्य की धारा-सभा की बैठक न होती हो तो वह अपनी विशेष आज्ञा द्वारा आवश्यक नियम लागू कर सकता है। वह प्रान्तीय धारा-सभा को सम्बोधित करके भाषण दे सकता है और अपना सन्देश धारा-सभा में भेज सकता है। यदि धारा-सभा में कोई प्रस्ताव विचाराधीन हो तो सन्देश के रूप में अपना मत धारा-सभा के अध्यक्ष के पास भेज सकता है। धारा-सभा उसके सन्देश पर उचित विचार करती है। राज्यपाल की स्वीकृति के बिना धारा-सभा से स्वीकृत प्रस्ताव कानून नहीं बन सकते। उसे अधिकार है कि विधेयक को स्वीकृत करे या रोक ले या उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ रख ले।

धन-सम्बन्धी विधेयकों को छोड़कर, वह किसी भी विधेयक को धारासभा के सदन या सदनो को पुनर्विचार के लिए वापस भेज सकता है, परन्तु यदि धारासभा उस विधेयक को संशोधित रूप में अथवा उसी रूप में फिर स्वीकृत कर ले तो राज्यपाल को उस पर स्वीकृति देनी होगी। उच्च न्यायालय के अधिकारों पर हानिकर प्रभाव डालने वाले प्रस्ताव को वह राष्ट्रपति के सम्मुख विचारार्थ भेज देगा।

धारासभा में राज्यपाल की सिफारिश से ही धनविधेयक या वित्तिय विधेयक प्रस्तावित हो सकते हैं। किसी कर को हटाने या कम करने वाले संशोधनों पर यह प्रतिबन्ध नहीं है।

राज्यपाल को अधिकार है कि राज्य की कार्यपालिका शक्ति के अन्तर्गत दिये गये दण्ड को कम कर दे, रद्द कर दे, स्थगित कर दे या बदल दे। भारतीय संघ द्वारा बनाये हुए कानून को तोड़ने वाले अपराधी को अथवा मृत्युदण्ड प्राप्त व्यक्ति को केवल राष्ट्रपति ही क्षमा कर सकता है।

राज्य का मन्त्रिमण्डल—

महत्त्व—

राज्य के शासन में मन्त्रिमण्डल का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विधान के अनुसार राज्य का शासन गवर्नर के नाम से होता है किन्तु वास्तव में शासन का पूरा भार मन्त्रियों के ऊपर होता है। मन्त्रिमण्डल ही शासन की नीति निर्धारित करता है। वह धारा-सभा के नियमों के लिए स्वीकृति लेता है तथा राज्य में शान्ति और व्यवस्था रखता है। वह जनता के हित की नयी योजना चलाता है।

मन्त्रिमण्डल का संघटन—

जब राज्य की धारा-सभा (विधान-मण्डल) का नया निर्वाचन हो जाता है तो राज्यपाल धारा-सभा के उस दल के नेता को मन्त्रिमण्डल निर्माण के लिए आमन्त्रित करता है, जिस दल का बहुमत होता है। यही बहुमत वाले दल का नेता राज्य का मुख्यमन्त्री होता है। राज्यपाल से नियन्त्रण पत्र के पश्चात् वह अपने दल के मुख्यव्यक्तियों का नाम मन्त्रिमण्डल में रखने लिये राज्यपाल के पास भेज देता है। कभी-कभी वह दूसरे दल के नेताओं से भी कुछ व्यक्तियों का नाम मन्त्रिमण्डल में रखने के लिए भेजता है। ऐसे मन्त्रिमण्डल 'संयुक्त मन्त्रिमण्डल' कहलाता है। मन्त्रिमण्डल में केवल वे व्यक्ति रखे जा सकते हैं जो राज्य की धारा-सभा (विधान परिषद् अथवा विधान-सभा) के सदस्य होते हैं।

यदि मुख्यमन्त्री किसी ऐसे व्यक्ति को मन्त्रिमण्डल में रखने को इच्छुक हो जो धारा-सभा का सदस्य नहीं है तो राज्यपाल उसे भी इस शर्त पर मन्त्रिमण्डल में सम्मिलित कर लेता है कि वह ६ माह के अन्दर ही धारा-सभा का सदस्य हो जाय ।

राज्यपाल द्वारा नियुक्त हो जाने पर मन्त्रिमण्डल शपथ ग्रहण करता है । तदनन्तर वह शासन-भार सम्हालता है । मन्त्रिमण्डल बनते ही मन्त्रियों के कार्य बाँट दिये जाते हैं । मुख्यमन्त्री राज्यपाल से परामर्श करता है कि किस विभाग का मन्त्री कौन व्यक्ति हो । मुख्यमन्त्री कुछ विभाग अपने पास रखता है । राज्यशासन के जितने विभाग हैं वे किसी-न-किसी मन्त्री के अधीन रहते हैं । किसी मन्त्री को एक से अधिक विभाग भी सौंप दिये जाते हैं । मन्त्रियों की सहायता के लिए उप-मन्त्री तथा सभा-सचिव भी नियुक्त किये जाते हैं । वे मन्त्रियों के कार्यों में सहायता करते हैं । वे मन्त्रिमण्डल को बैठक में सम्मिलित नहीं हो सकते ।

मन्त्रिमण्डल के कार्य—

यद्यपि संविधान के अनुसार मन्त्रिमण्डल का कार्य राज्यपाल के कामों में सहायता देना है पर व्यावहारिक रूप में वह राज्य के शासन का कार्य सम्पादित करता है । वह विधि-निर्माण का कार्य करता है तथा धारा-सभा में महत्वपूर्ण विधेयकों को उपस्थित करता है । यह राज्य के अनुमानित आय-व्यय को तैयार करता है और वित्त-सम्बन्धी प्रायः सभी विधेयक सभा में उपस्थित करता है ।

सेक्रेटरी आदि अधिकारी—

प्रत्येक विभाग का कार्य सुचारुरूप से चलाने के लिए एक विभागीय सेक्रेटरी तथा उनके कुछ सहायक पदाधिकारी होते हैं । इनका पद स्थायी होता है । मन्त्रियों की सहायता के लिए संसदीय सचिव या सभासचिव भी होता है । ये मन्त्रियों को धारा-सभा सम्बन्धी कार्यों में सहायता देते हैं । इन पदों पर विधान-सभा के सदस्यों की नियुक्ति होती है ।

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय

१० मन्त्रिमण्डल की कार्यप्रणाली—

प्रत्येक मन्त्री अपने विभाग का संचालन स्वयं करता है, किसी उल्लंघन आजाते पर मुख्यमन्त्री से परामर्श कर लेता है। विशेष प्रश्न पर पूरा मन्त्रिमण्डल विचार करता है। नयी योजना चलाने के लिए भी मन्त्रिमण्डल की स्वीकृति लेना अनिवार्य है। इसी लिए समय-समय पर (प्रायः प्रतिसप्ताह) मन्त्रिमण्डल की बैठक होती है। इस बैठक में मुख्यमन्त्री सभापति का आसन ग्रहण करता है। इसमें कोरम या मतदान की आवश्यकता नहीं। केवल मुख्य मन्त्री भी कोई निश्चय कर सकता है।

मन्त्रिमण्डल का उत्तरदायित्व—

मन्त्रिमण्डल स्वतन्त्र रूप से अपना कार्य और निर्णय करता है परन्तु सर्वथा निरंकुश नहीं है। वह धारा-सभा के प्रति उत्तरदायी है। धारा-सभा की नीति के विरुद्ध मन्त्रिमण्डल कोई भी कार्य नहीं कर सकता यदि वह कोई ऐसा कार्य करे तो धारा-सभा किसी भी मन्त्री या पूरे मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव ला सकती है। इस दशा में पूरे मन्त्रिमण्डल को त्यागपत्र देना पड़ेगा क्योंकि मन्त्रिमण्डल का उत्तरदायित्व सामूहिक या सम्मिलित है। प्रत्येक मन्त्री सभी मन्त्रियों के कार्य के प्रति उत्तरदायी है। इसी प्रकार मुख्यमन्त्री किसी मन्त्री को हटाना चाहे और वह त्यागपत्र न दे तो वह हटा नहीं जा सकता बल्कि पूरे मन्त्रिमण्डल को त्यागपत्र देना पड़ेगा। मुख्यमन्त्री भी दूसरा मन्त्रिमण्डल संघटित करेगा जिसमें वह व्यक्ति नहीं जिसे वह हटाना चाहता है। कोई मन्त्री मन्त्रिमण्डल की नीति से सहमत हो तो वह त्यागपत्र देकर पृथक् हो सकता है।

महाधिवक्ता (एडवोकेट जनरल)—

राज्यपाल को विधि-सम्बन्धी मामलों में सलाह देने के लिए राज्य में महाधिवक्ता की नियुक्ति की जाती है। इसकी नियुक्ति राज्यपाल करता है। उच्चन्यायालय के न्यायाधीश की योग्यता उसमें होनी चाहिये। जब तक राज्यपाल चाहें तब तक वह अपने पद पर बना रह सकता है। राज्यपाल ही उसका वेतन तथा भत्ता निश्चित करता है।

राज्य की धारा सभा (विधानमण्डल)

धारा-सभा क्या है ?—

किसी देश अथवा राज्य की सारी जनता एक स्थान पर एकत्र होकर शासन की नीति या रीति निर्धारित नहीं कर सकती । आज कल विशाल राज्यों में यह कार्य असम्भव है । इसलिए जनता के प्रतिनिधियों द्वारा यह कार्य होता है । जनता अपने विश्वासभाजन व्यक्ति को प्रतिनिधि चुनती है । इन प्रतिनिधियों द्वारा शासन का सञ्चालन होता है । इन प्रतिनिधियों की सभा को 'धारा-सभा' या 'विधानमण्डल' कहते हैं । विभिन्न देशों में धारा-सभाओं के विभिन्न नाम हैं, जैसे पार्लियामेण्ट, व्यवस्थापिका सभा, लोक सभा, असेम्बली, सिनेट, कौन्सिल आदि । विभिन्न देशों में इसकी चुनावप्रणाली भी पृथक् पृथक् है । संसार के अधिकांश देशों में धारा-सभा के सदस्य सीधे जनता द्वारा चुने जाते हैं । हमारे देश में केन्द्र तथा राज्यों में धारा सभाएँ हैं । इनका चुनाव भी जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से होता है । यहाँ हम राज्य की धारासभाओं का संक्षिप्त वर्णन करेंगे । नये विधान के अनुसार हमारे राज्य का नाम 'उत्तर प्रदेश' रखा गया है ।

राज्य की धारा सभा का संघटन—

हमारे राज्य की धारा-सभा के दो भवन हैं ।

(१) लेजिस्लेटिव कौन्सिल (विधान-परिषद्)

(२) लेजिस्लेटिव असेम्बली (विधान-सभा)

लेजिस्लेटिव कौन्सिल—

सन् १९३५ के विधान के अनुसार हमारे राज्य की विधानपरिषद् में कुल ६८ सदस्य होते थे । इनमें से ६० सदस्य जनता द्वारा चुने जाते थे । शेष सदस्य गवर्नर द्वारा मनोनीत किये जाते थे । कौन्सिल कभी भी भङ्ग नहीं की जा सकती थी । इसके एक तिहाई सदस्य प्रति तीसरे वर्ष हटा दिये जाते थे । उनके रिक्तस्थान पर नये सदस्य चुने जाते थे । सन् १९३५ के विधान के अनुसार कौन्सिल के चुनाव में बड़े-बड़े जमींदार, पूँजीपति और ऋच-पदाधिकारी ही चुने जा सकते थे ।

नये विधान के अनुसार विधान-परिषद् में कुछ निर्वाचित और कुछ मनोनीत सदस्य होते हैं। कौंसिल के सदस्यों की कुल संख्या असेम्बली के सदस्यों के चौथाई से अधिक होगी। परिषद् के एक तिहाई सदस्य म्युनिस्पल बोर्ड, जिला बोर्ड और दूसरी स्वायत्त शासन की संस्थाओं द्वारा चुने जायेंगे। परिषद् के १२ सदस्य प्रान्त में रहने वाले तीन वर्ष के पुराने स्नातकों (ग्रेजुएटों) (बी० ए० या समकक्ष शिक्षाप्राप्त व्यक्तियों) द्वारा चुने जाते हैं। १२ प्रान्त के उन शिक्षकों द्वारा निर्वाचित होते हैं जो कम-से-कम तीन वर्ष तक किसी विश्वविद्यालय, महाविद्यालय (कालेज), उच्चतर माध्यमिक विद्यालय (हायर सेकेण्डरी स्कूल) में शिक्षक रहे हों। तिहाई सदस्य असेम्बली द्वारा चुने जाते हैं और शेष गवर्नर द्वारा मनोनीत होते हैं। परिषद् कभी भी भङ्ग न होगी क्योंकि कुल संख्या के ३ सदस्य तीसरे वर्ष हटा दिये जाते हैं और उनके स्थान की पूर्ति के लिए नया निर्वाचन होता है। इस समय उत्तरप्रदेश की विधानपरिषद् में कुल ७२ सदस्य हैं। इनमें २४ स्थानीय संस्थाओं के सदस्य, ६ स्नातक, ६ अध्यापक, २४ विधान-सभा के सदस्यों द्वारा निर्वाचित तथा १२ मनोनीत सदस्य हैं।

सदस्यों की योग्यता—

- (१) भारत का नागरिक होना चाहिये।
- (२) ३० वर्ष से कम आयु न हो।
- (३) वे दूसरी योग्यताएँ हों जो विधानमण्डल विधि द्वारा निश्चित करे।

सभापति और उपसभापति—

विधान परिषद् के सदस्य अपने में से ही एक सभापति (चेयरमैन) तथा दूसरा उपसभापति (डिप्टीचेयरमैन) निर्वाचित करते हैं।

विधान-सभा और उसका संघटन—

सन् १९३५ के विधान के अनुसार हमारे राज्य में विधान सभा के कुल २८७ सदस्य होते थे। चुनाव सीधे जनता द्वारा तो होता था पर हिन्दू मुसलमान तथा ईसाई अपने प्रतिनिधियों को चुनते थे। विधान-सभा

कार्य-काल ५ वर्ष का था। पर पावर्नर उसे अवधि से पहले भी भंग कर सकता था। धन तथा योग्यता के आधार पर मत-दाताओं को मत-दान का अधिकार था।

नये संविधान के अनुसार विधान-सभा के लिए प्रतिनिधित्व का आधार यह होगा कि प्रति ७५,००० जनसंख्या पर एक प्रतिनिधि होता है। किसी भी राज्य की विधान-सभा के सदस्यों की संख्या ५०० से अधिक और ६० से कम न होगी। सम्पूर्ण राज्य के अन्दर समान अनुपात में प्रतिनिधित्व होगा। उत्तरप्रदेश की विधान-सभा में इस समय ४३० सदस्य होते हैं।

विधान सभा में संयुक्त निर्वाचन प्रणाली द्वारा चुनाव होता है। अन्य मत वालों तथा परिगणित जातियों के लिए स्थान तो सुरक्षित हैं पर उन्हें सभी अपना मत देते हैं। अब मतदाताओं के लिए धन अथवा योग्यता का प्रतिबन्ध नहीं रहा। सभी वयस्क व्यक्ति, चाहे स्त्री हों या पुरुष, मत प्रदान कर सकते हैं। केवल पागल, दिवालिये, नैतिक अपराधों के अपराधी और सरकारी कर्मचारी मतप्रदान नहीं कर सकते। विधान-सभा का कार्यकाल अब भी पाँच वर्ष है पर राज्यपाल को अधिकार है कि उसे बीच में ही भंग कर दे तथा नया निर्वाचन करावे।

प्रान्तीय धारा-सभा के सदस्यों के कुछ नियमः—

- (१) कोई भी व्यक्ति दोनों सभाओं (विधानपरिषद् तथा विधान सभा) का सदस्य नहीं हो सकता।
- (२) दिवालिये, पागल, नैतिक अपराधों के अपराधी, काले पानी का दण्ड पाये हुए व्यक्ति तथा वे व्यक्ति जिनसे नेकचलनी के लिए जमानत माँगी गयी हो धारा सभा के किसी सदन के सदस्य नहीं हो सकते।
- (३) सरकारी कर्मचारी भी धारा-सभा का सदस्य नहीं हो सकता। अवकाश प्राप्त सरकारी कर्मचारी चुनाव लड़ सकते हैं।
- (४) सदस्य अपने निर्वाचनक्षेत्र के मतदाता अवश्य हों।
- (५) अपने क्षेत्र के मत-दाता होने के अतिरिक्त उसकी आयु कम-से-कम ३० वर्ष और विधान सभा (असेम्बली) के सदस्य की आयु कम-से-कम २५ वर्ष होनी चाहिये।

५. प्रान्तीय धारा-सभा के अधिकार और कर्तव्य—

धारा-सभा के प्रधान कर्तव्य शासन की नीति निर्धारित करना, जनता के भलाई के लिए नये नियम बनाना, आवश्यकता पड़ने पर पुराने नियमों के संशोधन करना तथा मंत्रियों के कार्यों पर दृष्टि रखना है।

धारा सभा के सदस्य को प्रत्यक्ष रूप से शासन के किसी भी कार्य में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है। यदि वे किसी विभाग के कार्य को असन्तोषजनक समझते हैं तो सदन में उसकी टीका टिप्पणी कर सकते हैं। इस प्रकार वे विभागीय मन्त्री का ध्यान उस ओर आकर्षित कर सकते हैं। यदि धारा-सभा की चेतावनी पर भी किसी विभाग में सुधार न हो तो धारा-सभा उस विभाग के मन्त्री पर या पूरे मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव सभा में रखे। यदि अविश्वास का प्रस्ताव स्वीकृत हो गया तो पूरे मन्त्रिमण्डल को त्याग-पत्र देना अनिवार्य हो जायगा।

धारा-सभा का प्रान्तीय-निधि पर भी नियन्त्रण रहता है। मन्त्रिमण्डल को यह अधिकार नहीं है कि धारा-सभा की स्वीकृति के बिना कोई व्यय करे। यदि धारा-सभा को विश्वास हो जाय कि कोई विभाग अनावश्यक व्यय कर रहा है तो वह उस विभाग के व्यय में कमी कर सकती है।

धारा-सभा में नियम बनाने की विधि—

कोई भी नियम पहले सभा के सामने प्रस्ताव रूप में रखा जाता है। उस समय उसे 'विधेयक' या 'बिल' कहते हैं। आर्थिक विधेयकों के अतिरिक्त अन्य विधेयक दो में से किसी सदन में उपस्थित किया जा सकता है। धनसम्बन्धी विधेयक या नये कर या व्यय का विधेयक पहले विधान सभा में रखा जाता है। जब प्रस्ताव उपस्थित किया जाता है तो उस पर वाद-प्रतिवाद होता है। सभा के सदस्य उसमें संशोधन उपस्थित करते हैं। प्रस्ताव की स्वीकृति लिए तीन बार उस पर मत लिया जाता है। तीसरी बार स्वीकृत हो जाने पर वह दूसरे सदन में भेज दिया जाता है। वहाँ भी इसी प्रकार विचार होता है तथा तीन बार स्वीकृति ली जाती है। दोनों सदनों से स्वीकृति हो जाने पर

वह प्रस्ताव राज्यपाल की स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है। राज्यपाल की स्वीकृति मिल जाने पर वह प्रस्ताव राजनियम (कानून) बन जाता है। यदि किसी प्रस्ताव पर दोनों सदनों में मतभेद हो जाता है तो राज्यपाल दोनों सदनों की सम्मिलित बैठक बुला लेता है। उस बैठक में बहुमत के द्वारा निर्णय किया जाता है।

प्रान्त की न्याय-व्यवस्था

हमारे राज्य में उच्चन्यायालय (हाई-कोर्ट) सबसे उच्चन्यायालय है। पहले राज्य में दो उच्चन्यायालय थे—एक हाईकोर्ट इलाहाबाद में था और दूसरा लखनऊ में। आप के मन में यह विचार उत्पन्न हो सकता है कि एक ही राज्य में दो उच्चन्यायालय क्यों थे? आप को स्मरण होगा कि हमारा राज्य पहले संयुक्त प्रान्त कहलाता था। इसमें आगरा और अवध दो प्रान्त संयुक्त थे। इसलिए आगरा के लिए इलाहाबाद तथा अवध के लिए लखनऊ में उच्चन्यायालय थे। पर अब पूरे राज्य को उत्तरप्रदेश कहते हैं। यह अब एक राज्य माना जाता है। इसलिए मार्च १९४९ में अवध का उच्चन्यायालय इलाहाबाद के उच्चन्यायालय में मिला दिया गया। अब राज्य में एक ही उच्चन्यायालय केवल इलाहाबाद में है। इसमें कुल १९ न्यायाधीश (जज) हैं। इनमें से १४ इलाहाबाद में तथा ५ लखनऊ में मुकदमों का निर्णय करते हैं। प्रधान न्यायाधीश को ५०००) ६० मासिक तथा शेष को ४०००) ६० मासिक वेतन मिलता है। सभी जज प्रधान न्यायाधीश के नियन्त्रण में कार्य करते हैं। नये विधान में प्रधान न्यायाधीश का ४०००) ६० तथा अन्यथा ३५००) वेतन रखा गया है।

उच्चन्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति—

ब्रिटिश शासन में तो सत्राट् इज्ज न्यायाधीशों की नियुक्ति करता था। कभी-कभी गवर्नर जनरल हाई कोर्ट के सहायक जजों को नियुक्त कर देता था। पर नये विधान के अनुसार राष्ट्रपति उच्चन्यायालय के जजों की नियुक्ति करता है। राष्ट्रपति यह नियुक्ति राज्यपाल, उच्चन्यायालय के प्रधान न्यायाधीश और भारत के प्रधान न्यायाधीश से परामर्श से करता है। उच्चन्यायालय के ये

न्यायाधीश ६० वर्ष की आयु तक कार्य करने का अवसर प्राप्त करते हैं। इस बीच में यदि उनमें चरित्र सम्बन्धी दोष पाया जाय या उनकी अयोग्यता प्रमाणित होतो केन्द्रीय पार्लियामेण्ट के प्रस्ताव पर राष्ट्रपति उन्हें पृथक् कर सकता है।

उच्चन्याया 'य के न्यायाधीश के लिए अपेक्षित योग्यताएँ—

उच्चन्यायालय के न्यायाधीश का पद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं उत्तरदायित्व का है, इसलिए इस पद पर केवल अनुभवी, सच्चरित्र, सच्चे तथा योग्य व्यक्ति ही नियुक्त किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त वह १० वर्ष तक न्यायाधीश रहा हो अथवा इतने ही काल तक हाईकोर्ट में वकालत कर चुका हो।

उच्चन्यायालय के आधीन न्यायालय—

उच्चन्यायालय राज्य का सर्वोच्च न्यायालय है। जिले के सभी फौजदारी तथा दीवानी न्यायालय इसके अधीन कार्य करते हैं। कोई भी मुकदमा सीधे उच्चन्यायालय में नहीं सुना जाता। जिले की अदालतों के मुकदमों की केवल अपील उच्चन्यायालय में होती है। जिले में फौजदारी का सर्वोच्च न्यायालय 'सेशनकोर्ट' है। इसका न्यायाधीश सेशनजज होता है। डाका, हत्या, बलवा आदि बड़े अपराधों की सुनवाई सेशन जज के न्यायालय में होती है। सेशन जज के अधीन अन्य फौजदारी न्यायालय होते हैं। इनको मजिस्ट्रेट के न्यायालय कहते हैं। मजिस्ट्रेटों की श्रेणियाँ होती हैं। ये प्रथम, दूसरी तथा तीसरी श्रेणी में विभक्त होते हैं। प्रथमश्रेणी का मजिस्ट्रेट दो वर्ष तक का दण्ड तथा १००० रुपये अर्थदण्ड दे सकता है। दूसरी श्रेणी का मजिस्ट्रेट ६ माह का दण्ड तथा २००) अर्थ दण्ड दे सकता है। तीसरी श्रेणी का मजिस्ट्रेट १ माह का दण्ड तथा ५०) अर्थदण्ड दे सकता है। इनके अतिरिक्त कुछ अवैतनिक मजिस्ट्रेट भी होते हैं। इनको भी श्रेणियों में विभक्त कर देते हैं और इनको भी श्रेणी के अनुसार उक्त अधिकार प्राप्त हैं।

जिले में दीवानी का सबसे उच्चन्यायालय जिला जज का न्यायालय है। जिला जज के अधीन सिविल जज, सब-जज और मुन्सिफ के न्यायालय

होते हैं। दीवानी के साधारण मुकदमों का फैसला मुन्सिफ के न्यायालय में होता है। २०००) से अधिक धन के झगड़ों का मुकदमा सव-जज या सिविल जज के न्यायालय में सुना जाता है। इन न्यायालयों की अपील जिला जज के यहाँ होती है। ५०००) से अधिक धन की अपील जिला जज के यहाँ न होकर सीधे उच्चन्यायालय में होती है। श्रेष्ठ मुकदमों की अपील भी उच्च न्यायालय में हो सकती है किन्तु उनकी अपील पहले जिला जज के यहाँ करना अनिवार्य है।

उच्चन्यायालय के कर्तव्य और अधिकार—

जिले के दीवानी तथा फौजदारी के मुकदमों की अपील सुनना तथा निर्णय करना उच्चन्यायालय का प्रधान कर्तव्य है। राज्य की न्याय-व्यवस्था को सुचारु-रूप से चलाना भी उच्चन्यायालय का कर्तव्य है। इसीलिए उच्च न्यायालय को अधिकार दिया गया है कि अपने अधीनस्थ न्यायालयों का कार्यक्रम बनावे तथा हिसाब-किताब रखने का ढङ्ग निश्चित करे।

उच्च न्यायालय को उचित कारण मिलने पर राज्य के किसी दीवानी या फौजदारी के मुकदमे को एक न्यायालय से उसी श्रेणी के दूसरे न्यायालय में भेजने का भी अधिकार है।

केन्द्रीय शासन

ब्रिटिश शासनकाल—

ब्रिटिश शासन में समस्त भारत के लिए ब्रिटेन का मन्त्रि-मण्डल एक मन्त्री अलग नियुक्त करता था। उसे भारतमन्त्री कहते थे। वह भारतीय शासन के सभी पहलुओं पर नियन्त्रण रखता था। भारत पर शासन के लिए एक 'गवर्नर जनरल' नियुक्त किया जाता था। वह सम्राट् के प्रतिनिधि रूप में शासन करता था, वह भारतमन्त्री तथा ब्रिटिश पार्लामेण्ट के प्रति उत्तरदायी होता था। उसके अधिकार अपरिमित थे। यद्यपि उसकी सहायता के लिए एक कौन्सिल रहती थी पर गवर्नर जनरल उसके निर्णयों को मागने में स्वतन्त्र था। वह केन्द्रीय कोष से वेतन पाता था।

नये विधान के अनुसार केन्द्रीय शासन—

नये विधान के अनुसार केन्द्र की शासन-व्यवस्था राज्यों के शासन की भाँति है। गवर्नर तथा उसकी कार्यकारिणी कौन्सिल के स्थान पर भारतीय संघ का प्रधान अपने मन्त्रिमण्डल की सहायता से देश का शासन करता है। भारतीय संघ के प्रधान को 'राष्ट्रपति' कहते हैं। जिस प्रकार राज्य का शासन राज्यपाल के नाम पर चलता है उसी प्रकार केन्द्रीय शासन राष्ट्रपति के नाम पर होता है। संसार के समस्त देशों के वैधानिक प्रधानों में भारत के राष्ट्रपति की स्थिति अद्वितीय है। वह राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है। वैधानिक प्रधान होने के कारण वह राष्ट्र का प्रतीक है, भारत का सर्वश्रेष्ठ सम्मान प्राप्त नागरिक तथा राज्य में सर्वोपरि है। उसी के नाम से राष्ट्र की नीति-घोषणा, संघ सरकार के महत्वपूर्ण पदों की नियुक्ति, संकटकालीन अधिकारों का प्रयोग तथा राष्ट्र के सभी महत्वपूर्ण निर्णयों की घोषणा होती है।

राष्ट्रपति का निर्वाचन—

नये विधान के अनुसार राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचन मण्डल करता है। इस में केन्द्र की धारा-सभा (पार्लियामेण्ट) के निर्वाचित सदस्य और राज्यों की धारासभाओं के प्रतिनिधि होते हैं। जिन राज्यों की धारा-सभा में दो सदन हों वहाँ से राष्ट्रपति के निर्वाचन के लिए विधान सभा के प्रतिनिधि जाते हैं। प्रथम राष्ट्रपति की नियुक्ति विधान परिषद् ने की है। इस पद पर डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद प्रथम राष्ट्रपति नियुक्त हुए हैं। राष्ट्रपति का कार्यकाल ५ वर्ष है। राष्ट्रपति निर्वाचित होने के लए निम्न योग्यताएँ होनी चाहिये।

- (१) वह भारत का नागरिक हो।
- (२) उसकी आयु ३५ वर्ष से अधिक हो।
- (३) लोकसभा में निर्वाचित होने के लिए आवश्यक योग्यता हो।
- (४) वह भारत सरकार, राज्य की सरकार या किसी ऐसे स्थानीय या अन्य अधिकारी के अधीन जिस पर इन सरकारों में किसी का भी नियन्त्रण हो, लाभ का पद ग्रहण न कर रहा हो।

यह प्रतिबन्ध संघ के राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, किसी राज्य के राज्यपाल या राज-प्रमुख, संघ अथवा अन्तर्गत राज्य के मन्त्री पर लागू न होगा। वे राष्ट्रपति पद के लिए चुनाव लड़ सकते हैं। राष्ट्रपति निर्वाचित होने वाला व्यक्ति संसद के किसी सदन का या राज्य के विधानमण्डल का सदस्य नहीं रह सकता। वह किसी आर्थिक लाभ का पद ग्रहण नहीं कर सकेगा। जो व्यक्ति राष्ट्रपति रह चुका है वह केवल एक बार और राष्ट्रपति पद के लिए चुनाव लड़ सकता है। इस प्रकार कोई भी व्यक्ति दो बार से अधिक राष्ट्रपति नहीं रह सकता।

राष्ट्रपति का कार्य-काल—

साधारणतः राष्ट्रपति निर्वाचन तिथि से पाँच वर्ष तक इस पद पर आसीन रहेगा। कुछ विशेष दशाओं में अन्तर भी पड़ सकता है। जैसे—

- (१) राष्ट्रपति पाँच वर्ष के अन्दर ही त्याग-पत्र देकर हट सकता है।
- (२) राष्ट्रपति यदि संविधान का उल्लंघन करे तो उस पर महाभियोग लगाकर पाँच वर्ष के अन्दर ही हटाया जा सकता है।
- (३) यदि उक्त कारणों से राष्ट्रपति का पद अवधि के अन्दर ही रिक्त हो अथवा उसकी मृत्यु हो जाय तो नया राष्ट्रपति जल्दी से जल्दी (६ मास के अन्दर) ही चुन लिया जायगा। इस बीच उप-राष्ट्रपति राष्ट्रपति का काम करेगा।

उपराष्ट्रपति—

राष्ट्रपति के अतिरिक्त केन्द्र में एक उपराष्ट्रपति भी चुना जाता है। केन्द्रीय धारा-सभा के दोनों सदन के सदस्य संयुक्त होकर उपराष्ट्रपति का निर्वाचन करते हैं। भारत का उपराष्ट्रपति केन्द्रीय धारासभा के उच्चसदन का अध्यक्ष भी होता है। उपराष्ट्रपद की भी योग्यताएँ राष्ट्रपति-पद की योग्यताओं के ही समान हैं। इस समय डाक्टर एस० राधाकृष्णन् भारत के उप-राष्ट्रपति हैं।

राष्ट्रपति के अधिकार और कर्तव्य—

यह पहले ही बतला चुके हैं कि भारतीय संघ का सब कार्य राष्ट्रपति के ही नाम से होते हैं। केन्द्र के नियम और आज्ञाएँ उसी के नाम से

चलती हैं। वह भारतीय सेना का प्रधान है। केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के मन्त्रियों की नियुक्ति भी वही करता है। वह मन्त्रिमण्डल से शासन-सम्बन्धी कोई भी सूचना माँग सकता है। प्रधानमन्त्री का कर्तव्य है कि वह समय-समय पर राष्ट्रपति को महत्वपूर्ण बातों की सूचना देता रहे। राष्ट्रपति को विशेष आज्ञा (आर्डिनेन्स) जारी करने का अधिकार है। यदि देश में संकट का समय उपस्थित हो जाय और केन्द्रीय धारासभा का अधिवेशन न हो तो राष्ट्रपति विशेष आज्ञा जारी कर सकता है। यह विशेष आज्ञा कानून की तरह ही मानी जायगी। पर धारा-सभा के अगले अधिवेशन में उपस्थित कर उस विशेष आज्ञा की स्वीकृति लेना आवश्यक है। राष्ट्रपति का पद ब्रिटिश काल के गवर्नर जनरल के पद से बहुत ऊँचा है। सब अधिकार रहते हुए गवर्नर जनरल ब्रिटेन की सरकार के अधीन एक कर्मचारी था; पर राष्ट्रपति एक स्वतन्त्र राष्ट्र का प्रधान है। राष्ट्रपति को गवर्नर जनरल के समान शासन का अधिकार नहीं प्राप्त है। गवर्नर जनरल शासन के महत्वपूर्ण विभागों की देखरेख स्वयं करता था। राष्ट्रपति किसी विभाग की देख-रेख स्वयं नहीं करता। मन्त्रियों पर ही शासन का भार तथा उत्तरदायित्व है। गवर्नर जनरल अपनी कार्यकारिणी कौन्सिल के निर्णयों या परामर्शों के विरुद्ध भी कार्य कर सकता था पर राष्ट्रपति अपने मन्त्रिमण्डल के परामर्श से ही कार्य कर सकता है। गवर्नर जनरल पर धारा-सभा अभियोग नहीं चला सकती थी, पर राष्ट्रपति पर अभियोग चल सकता है। यदि धारा-सभा के दो तिहाई सदस्य राष्ट्रपति के विरुद्ध मत दें तो वह अपना पद छोड़ने को बाध्य होगा।

केन्द्रीय मंत्रिमण्डल—

आप यह पद चुके हैं कि राज्य के मंत्रिमण्डल का किस प्रकार संघटन होता है और उस की कार्य-प्रणाली क्या है? केन्द्रीय मंत्रिमण्डल का संघटन और कार्य-प्रणाली भी वैसी ही है। राष्ट्रपति केन्द्र की लोकसभा के उस दल के नेता को मंत्रिमण्डल बनाने के लिए आमंत्रित करता है जिसका बहुमत रहता है। वही व्यक्ति प्रधानमंत्री होता है। मंत्रिमण्डल के निर्माण का आमंत्रण द्यकर वह राष्ट्रपति को, मंत्रियों की नामावली देता है। राष्ट्रपति उस के

परामर्श से मंत्रियों की नियुक्ति करता है । विधानतः मंत्रि-मण्डल का कार्य शासन को परामर्श देना है पर कार्यरूप में वही शासन का भार एवं उत्तरदायित्व सहालता है । आज्ञाएँ तथा नियमादि राष्ट्रपति के नाम से चलाये जाते हैं किन्तु शासन-संचालन वास्तव में मंत्री ही करते हैं । प्रधानमंत्री प्रायः अपने ही दल के सदस्यों को मंत्रि-मण्डल में रखता है । पर कभी अन्य दल के नेताओं को मंत्रि-मण्डल में सम्मिलित करने की आवश्यकता पड़ती है । ऐसे मंत्रि-मण्डल को 'संयुक्त मंत्रि-मण्डल' कहते हैं । केन्द्रीय धारासभा के सदस्य ही मंत्री-पद पर नियुक्त किये जाते हैं । किन्तु प्रधानमंत्री यदि किसी ऐसे व्यक्ति को मंत्रि-मण्डल में रखना चाहता है जो धारासभा का सदस्य नहीं है तो उसे भी मंत्रि-मण्डल में सम्मिलित कर सकते हैं । ऐसे व्यक्ति के लिए यह अनिवार्य है कि वह ६ मास के भीतर ही धारा-सभा का सदस्य बन जाय ।

राज्यों की ही भाँति केन्द्रीयशासन में भी प्रत्येक मंत्री को पृथक् पृथक् विभाग बाँट दिये जाते हैं । मंत्री अपने विभाग की देख-रेख स्वयं करता है । विशेष या महत्वपूर्ण कार्य यथा नीतिनिर्धारण में सारा मंत्रि-मण्डल विचार करता है । मंत्रि-मण्डल की बैठक में प्रधानमंत्री अध्यक्ष रहता है । केन्द्रीय-शासन के मुख्यविभाग वैदेशिक, रक्षा, गृह, अर्थ, व्यवसाय, यातायात, कृषि, विद्युत्, श्रम, शिक्षा, सूचना आदि हैं ।

मंत्रिमण्डल केन्द्रीय धारा सभा के नियंत्रण में काम करता है । वह धारा सभा के प्रति उत्तरदायी होता है । जब तक धारा-सभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त है तभी तक मंत्रि-मण्डल कार्य कर सकता है । यदि धारा-सभा में मंत्रि-मण्डल या किसी मंत्री के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव स्वीकृत हो जाय तो मंत्रि-मण्डल को त्याग-पत्र दे देना पड़ता है । मंत्रि-मण्डल का संयुक्त उत्तरदायित्व है । प्रत्येक मंत्री प्रत्येक मंत्री के कार्यों के लिए उत्तरदायी माना जाता है ।

स्वतंत्र-भारत के प्रथम प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू हैं । इन्होंने बड़ी योग्यता एवं कुशलता के साथ इस पद पर कार्य किया है । भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात् देश की स्थिति सुधारने तथा उन्नति करने का साग्रा श्रेय

नेहरू जी को ही है। इन्हीं की तटस्थता तथा सह-अस्तित्व की नीति के कारण आज हमारा देश संसार के महान् राष्ट्रों में गिना जाता है। केवल इतनाही नहीं बरन् विश्व का प्रत्येक राष्ट्र भारत की ओर दृष्टि लगाये हुए है और इसकी मैत्री प्राप्त कर अपने को धन्य समझता है।

केन्द्रीय धारा-सभा (पार्लियामेण्ट—)

ब्रिटिश शासन में केन्द्रीय धारासभा के दो सदन राज्यपरिषद् (*Council of state*) और केन्द्रीय लेजिस्लेटिव असेम्बली (*Central Legislative Assembly*) थे। पर १९४६ में भारत का संविधान बनाने के लिए विधान परिषद् की स्थापना हुई। इसकी स्थापना के कुछ दिन बाद केन्द्रीयधारा सभा तोड़ दी गयी। उसका कार्य विधान परिषद् करती रही। सन् १९५१ में आम चुनाव हुआ। नये संविधान के अनुसार केन्द्रीयधारा सभा का संघटन हुआ। तब से यही धारा-सभा केन्द्र का शासन कार्य कर रही है।

नये संविधान के अनुसार धारा-सभा का संघटन—

पहले की ही भाँति धारा-सभा में दो सदन रखे गये हैं। एक का नाम 'राज्यपरिषद्' तथा दूसरे का नाम 'लोकसभा' है। इनमें समस्त देश के प्रतिनिधि होते हैं।

राज्यपरिषद्—राज्य-परिषद् में अधिक से अधिक २५० सदस्य हो सकते हैं। इनमें से अधिक से अधिक १२ सदस्यों को राष्ट्रपति मनोनीत कर सकते हैं। राष्ट्रपति ऐसे व्यक्ति को मनोनीत करेंगे जिन्होंने कला, साहित्य, विज्ञान, कृषि, समाजसेवा, इंजीनियरिंग, सांस्कृतिक-उत्थान आदि का कार्य किया हो। शेष सदस्य राज्यों की धारा सभा से चुने जाने चाहिये। इस प्रकार निर्वाचित सदस्यों की संख्या २३८ होगी। इस समय राज्य परिषद् में २१६ सदस्य हैं। जिन राज्यों में धारा-सभा के दो सदन हैं वहाँ के विधान सभा (लेजिस्लेटिव असेम्बली) के सदस्य ही केन्द्रीय राज्य परिषद् के निर्वाचन में भाग ले सकते हैं। इसके एकतिहाई सदस्य प्रति दूसरे वर्ष हटा दिये जाते हैं और उनके स्थान पर नया चुनाव होता है। अतः राज्यपरिषद् कभी भी भंग नहीं हो सकती।

लोक-सभा—

इसके सदस्य सीधे जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं। यह चुनाव वयस्क तथा संयुक्त निर्वाचन प्रणाली के आधार पर होता है। २१ वर्ष की आयु के वे सभी व्यक्ति इस चुनाव में मत-दान कर सकते हैं जो भारतीय नागरिक हों और जिनका मत देने का अधिकार किसी कारण से छीन न लिया गया हो। राज्य के मताधिकार के वर्णन में आप पढ़ चुके हैं कि पागल, दिवालिये एवं नैतिक अपराधों के अपराधी मताधिकार से वंचित कर दिये जाते हैं। यही नियम केन्द्र के मताधिकार के लिए भी लागू होता है। लोकसभा में ५०० से अधिक सदस्य नहीं हो सकते। सम्प्रति इस केन्द्रीय सभा में ४९९ सदस्य हैं। पाँच लाख की जन संख्या पर लोकसभा के लिए एक सदस्य चुना जाता है। लोकसभा का कार्य-काल पाँच वर्ष है। राष्ट्रपति यदि आदेश दें तो पाँच वर्ष के अन्दर ही लोकसभा भंग की सकती है। इसके अतिरिक्त संकटकालीन स्थिति में राष्ट्र-पति को इसका कार्य-काल केवल एक वर्ष तक बढ़ाने का अधिकार है।

केन्द्रीय धारा-सभा के सदस्यों की योग्यताएँ—

- (१) केन्द्रीय धारासभा का सदस्य केवल वही व्यक्ति हो सकता है जो भारत का नागरिक हो।
- (२) वह यदि लोक सभा की सदस्यता के लिए उम्मीदवार है तो उसकी आयु २५ वर्ष होनी चाहिये। राज्यपरिषद् के लिए ३० वर्ष की आयु होना आवश्यक है।
- (३) वह राज्य या केन्द्र के शासन का कर्मचारी न हो।
- (४) उसमें वे दूसरी योग्यताएँ हो जो संसद विधि द्वारा निश्चित करे।

संसद सदस्य—

संसद के प्रत्येक सदस्य को पद-ग्रहण करने के पूर्व राष्ट्र-पति अथवा उसके द्वारा नियुक्त व्यक्ति के सामने संविधान के प्रति भक्ति तथा कर्तव्य-पालन के लिए शपथ लेनी पड़ती है। कोई भी व्यक्ति एक साथ दोनों सदनों का सदस्य नहीं हो सकता। एक साथ संसद के दोनों सदनों के सदस्य चुने जाने या

राज्य की धारा सभा के सदस्य चुने जाने पर एक स्थान से त्याग-पत्र देना अनिवार्य है। संसद का प्रत्येक सदस्य वहाँ भाषण देने के लिए स्वतंत्र है। ऐसे भाषणों के विरुद्ध किसी न्यायालय में मुकदमा नहीं चल सकता। सदस्यों का वेतन और भत्ता संसद द्वारा निश्चित होता है।

संसद की कार्य-प्रणाली—

वर्ष में संसद के दो अधिवेशन अवश्य होने चाहिये। प्रत्येक अधिवेशन के प्रारम्भ में राष्ट्रपति संसद में भाषण देते हैं। संसद के संयुक्त अधिवेशन में राष्ट्रपति राज्य परिषद् के सभापति तथा लोकसभा के परामर्श से कार्यवाही के नियम बनाते हैं। संयुक्त अधिवेशन में लोक-सभा का अध्यक्ष सभापति होता है। संसद एक विधान-मंडल है। उसका मुख्य कार्य कानून बनाना है। इससे अतिरिक्त वह देखती है कि वे कानून कार्य रूप में परिणत हों। संसद सरकारी आय-व्यय पर नियंत्रण रखती है। वह अनुमानित आय-व्यय (बजट) के विभिन्न मदों को स्वीकार करती है। विधेयक संसद के किसी सदन में प्रस्तावित हो सकते हैं। सदनों के मत-भेद की स्थिति में संयुक्त अधिवेशन द्वारा निर्णय किया जाता है। धन सम्बन्धी विधेयक केवल लोक-सभा में प्रस्तावित होते हैं। धन सम्बन्धी विधेयक के लिए संयुक्त अधिवेशन की व्यवस्था नहीं है। धन सम्बन्धी विधेयक पर राष्ट्रपति पहली बार हस्ताक्षर कर देता है और वह कानून बन जाता है। संसद देश की नीति निर्धारित करती है। वह मन्त्रिमण्डल पर नियन्त्रण रखती है। वह संविधान में संशोधन भी कर सकती है।

संघ-न्यायालय

ब्रिटिश शासन में १९३५ के विधान के अनुसार संघ-न्यायालय की व्यवस्था की गयी थी। इसी के अनुसार सन् १९३७ में 'संघ-न्यायालय' की स्थापना हुई। संघ न्यायालय भारत का सर्वोच्च न्यायालय है। उसके निर्णय की अपील कहीं नहीं हो सकती। मुख्य न्यायाधीश के अतिरिक्त सात न्यायाधीश इसमें और होते हैं। आवश्यकता पड़ने पर यह संख्या अधिक भी हो सकती है।

न्यायाधीश की नियुक्ति—

इस पद पर केवल कानून-विशेषज्ञ तथा अनुभवी व्यक्ति नियुक्त किये जाते हैं। वह व्यक्ति भारत का नागरिक अवश्य हो। उसने भारत के किसी उच्चन्यायालय (हाई कोर्ट) में कम-से-कम ५ वर्ष न्यायाधीश का कार्य किया हो, या १० वर्ष तक उच्चन्यायालय में वकालत कर चुका हो। राष्ट्रपति संघ न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश की नियुक्ति करता है। अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति प्रधान न्यायाधीश के परामर्श से राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। उच्चन्यायालय के न्यायाधीश को तो राष्ट्रपति चरित्र सम्बन्धी दोष या अयोग्यता के कारण पद-च्युत कर सकता है, किन्तु संघ-न्यायालय के किसी न्यायाधीश को तभी हटा सकता है जब संसद के दोनों सदन उक्त न्यायाधीश के विरुद्ध अलग-अलग प्रस्ताव स्वीकृत करें। इस प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने पर वह राष्ट्रपति द्वारा पद-च्युत किया जायगा। नये विधान के अनुसार संघ-न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश का वेतन ५०००) मासिक तथा अन्य न्यायाधीशों का वेतन ४०००) निश्चित है। इस वेतन में कमी नहीं हो सकती। उनके भत्ते आदि का निश्चय संसद करती है।

संघ-न्यायालय के अधिकार तथा कर्तव्य—

संघ-न्यायालय का सब से महत्वपूर्ण कार्य विधान की रक्षा करना है। वर्तमान संविधान के प्रतिकूल यदि कोई राज-धारा-सभा या संसद नियम बनावे तो संघ न्यायालय को अधिकार है कि उस नियम को अवैध घोषित कर दे। इस घोषणा के पश्चात् वह नियम रह हो जायगा। भारतीय संघ तथा उसके अन्तर्गत राज्य में अथवा दो राज्यों में विधान सम्बन्धी झगड़ा होने पर वह सीधे संघ न्यायालय में रखा जायगा। इस प्रकार के झगड़े पर किसी अन्य न्यायालय में विचार नहीं हो सकता। राज्यों के उच्चन्यायालयों के निर्णय की अपील भी संघ न्यायालय में की जाती है।

यदि राष्ट्रपति किसी कानूनी विषय पर संघ-न्यायालय से सम्मति मांगे तो संघ-न्यायालय का कर्तव्य है कि वह उस विषय में अपनी सम्मति दे। उस सम्मति को मानने या न मानने में राष्ट्रपति स्वतन्त्र है।

अध्याय ६

नागरिकों के अधिकार और कर्तव्य

अधिकार—

प्रत्येक देश के नागरिकों को विधानतः कुछ मौलिक अधिकार दिये जाते हैं। ये अधिकार विभिन्न देशों में एक से नहीं पाये जाते फिर भी कुछ अत्यन्त आवश्यक एवं अनिवार्य अधिकार तो सभी देशों में मिलते हैं। इन अधिकारों के उपभोग से ही नागरिक पूरी स्वतन्त्रता एवं जीवन-सुख का अनुभव कर सकता है। स्वतन्त्र भारत के विधान में भी इन अधिकारों की विशद व्याख्या है। ये अधिकार भारतीय नागरिक को प्राप्त हैं। इन अधिकारों का विवरण यों है।

१ प्राण-रक्षा का अधिकार—

जीवन के लिए प्राण-रक्षा का अधिकार अनिवार्य है। यदि जीवन की सुरक्षा-व्यवस्था नहीं है तो हम स्वतन्त्रता का उपभोग कैसे कर सकते हैं। अतः शासन का यह सबसे पहला तथा प्रधान कर्तव्य है कि वह नागरिकों की प्राण-रक्षा की समुचित व्यवस्था करे। सभी देशों में इस प्रकार की व्यवस्था पायी जाती है। इसके अतिरिक्त मनुष्य को स्वयं अपनी प्राण-रक्षा का अधिकार है। यदि किसी नागरिक के प्राण-हरण का प्रयास किया जाता है तो वह सभी सम्भव उपायों से अपनी रक्षा करने का अधिकारी है। ऐसा करने में यदि आक्रमणकारी की हत्या भी हो जाय तो वह नागरिक अपराधी नहीं माना जा सकता।

२ सम्पत्ति का अधिकार—

जीवन-रक्षा के साथ साथ नागरिक की सम्पत्ति की भी रक्षा होनी चाहिये। शासन द्वारा इस प्रकार का प्रबन्ध होना चाहिए कि कोई भी नागरिक अपनी सम्पत्ति का उपभोग कर सके। यदि किसी नागरिक की सम्पत्ति या उसके उपभोग से राष्ट्र को अथवा सार्वजनिक स्तार्थ को हानि पहुँच रही हो तो शासन को अधिकार है कि वह उस नागरिक को ऐसा करने से रोक दे। राष्ट्र-हित के लिए सरकार व्यक्तिगत सम्पत्ति या व्यवसाय को ले सकती है। उसे यह अधिकार है कि वह ऐसा करे, पर इस स्थिति में सम्पत्ति के स्वामी को उचित धन दे देना चाहिए। भारतीय संविधान में इस प्रकार का मूल्य देने की व्यवस्था है।

३ धार्मिक अधिकार—

सरकार की ओर से नागरिकों को यह स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये कि वह चाहे जिस धर्म को सने । उसकी ओर से धार्मिक विषयों में बिल्कुल हस्तक्षेप न होना चाहिये । भारत में प्रत्येक नागरिक को अपने धर्म को मानने की पूर्ण स्वतन्त्रता है । धर्म या सम्प्रदाय की आड़ में अनैतिक या अहितकर कार्य करने वालों को सरकार रोक सकती है । जिन धार्मिक कृत्यों अथवा विश्वासों से शान्ति-भङ्ग होने की सम्भावना हो उन्हें भी रोकने का अधिकार सरकार को प्राप्त है ।

४ सांस्कृतिक अधिकार—

प्रत्येक भारतीय नागरिक को अधिकार है कि वह अपनी जाति, धर्म, सम्प्रदाय के अनुसार अपनी संस्कृति का अनुसरण करे । सरकार इसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकती । हमारे देश में तो अनेक लिपि, भाषा, संस्कार आदि हैं । अपने विश्वासों तथा प्रथाओं के अनुरूप प्रत्येक व्यक्ति निर्बाध जीवन व्यतीत कर सकता है ।

५ समानता का अधिकार—

विधान के अनुसार सभी नागरिक बराबर हैं । उनमें किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं माना गया है । सभी लोगों पर एक ही प्रकार का नियम लागू है । धर्म, वर्ण या जाति के कारण किसी व्यक्ति को किसी पद या व्यवसाय से वञ्चित नहीं रखा जा सकता । योग्यता के आधार पर सभी लोग अपनी उन्नति कर सकते हैं ।

६ भाषण-स्वातन्त्र्य—

राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक स्वतन्त्रता पूर्वक अपने विचारों को प्रकट कर सकता है । वह लेखों या भाषणों द्वारा अपने विचारों का प्रसार भी कर सकता है । पर इन कार्यों के द्वारा वह असत्य, अपमानजनक या राष्ट्र के लिए अहितकर विचार नहीं प्रसारित कर सकता । वह शान्तिमय, वैधानिक ढङ्ग से शासन की भी आलोचना कर सकता है । इसके लिए उसे कोई भी दण्ड या भय नहीं है । पर व्यर्थ की आलोचना से देश की प्रगति तथा उन्नति में बाधा नहीं पड़नी चाहिये ।

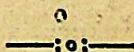
७. निर्वाचन का अधिकार—

हमारे देश में वयस्क मतदाधिकार स्वीकृत हो चुका है । २१ वर्ष की आयु से अधिक अवस्था वाले, स्त्री-पुरुष सबको मत देने का अधिकार है । पर नागरिकों को इस अधिकार का महत्व समझना चाहिये । उन्हें किसी प्रभाव में न आना चाहिये वरन् अपना सच्चा मत प्रकट करना चाहिये । मतदाताओं के लिए योग्यता या धन सम्बन्धी कोई प्रतिबन्ध नहीं है । वयस्क होने पर मतदान करके कोई भी नागरिक देश के शासन में हाथ बँटा सकता है । केवल दिवालिये, पागल या नैतिक अपराधों के अपराधी ही इस अधिकार से वंचित रखे गये हैं । यह सर्वथा उचित भी है । इस अधिकारों के अतिरिक्त अनेक अन्य अधिकार भी नागरिकों को दिये गये हैं । इस प्रकार संविधान में नागरिकों के लिए आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करने की व्यवस्था है ।

कर्तव्य—

नागरिकों के अधिकारों का संक्षिप्त विवरण आपके सम्मुख रखा गया है । यह सदैव स्मरण रखना चाहिये कि प्रत्येक अधिकार के साथ कर्तव्य भी है । केवल नियम बनाने से ही किसी देश का शासन उत्तम एवं शान्तिमय नहीं हो सकता । वहाँ के नागरिकों का यह कर्तव्य भी है कि उन नियमों का पालन करें । वे सरकार के कार्यों में सहयोग दें तथा देश के कल्याण के लिए कार्य करें । नागरिक का सर्व-प्रथम कर्तव्य है कि वह देश-भक्ति की भावना से अपने हृदय को ओत-प्रोत रखे क्योंकि 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' अर्थात् माता और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर हैं । प्रत्येक नागरिक का परमपुनीत कर्तव्य है कि वह देश की रक्षा में प्राणों की आहुति देने की आवश्यकता होने पर सबसे पहले आगे आवे । वह ऐसे उत्तम कार्य करे कि देश का गौरव बढ़े तथा उसकी कीर्ति-प्रताका अखिल विश्व में फहरा उठे । देश-प्रेम के आवेश में हम अन्य देशों से घृणा न करें वरन् 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के अनुसार सबसे प्रेम और सहानुभूति रख कर विश्व-शान्ति की सच्चा स्वरूप संसार के समक्ष रखें । हम राज्य के नियमों का सच्चाई के साथ पालन करें । यदि नियमों का पालन

हम न करेंगे तो सारे देश में अव्यवस्था और अशाजकता का ताण्डव नृत्य होने लगेगा। उस स्थिति में न तो हम व्यक्तिगत उन्नति कर सकते हैं और न देश का कल्याण ही। यदि कोई नियम अनुचित प्रतीत हो तो विवेकपूर्वक उस पर मनन करना चाहिये और आवश्यकता पड़ने पर वैधानिक ढङ्ग से उसे परिवर्तित कराने का प्रयास करना चाहिये। राज्य की ओर से लगे कर का चुकाना भी नागरिकों का परम कर्तव्य है। 'कर' केवल राज्य के व्यय के लिए लगाये जाते हैं। हमारा यह धन राज्य की व्यवस्था, रक्षा, निर्माण तथा उत्थान में व्यय होता है। इसलिए इसे न चुकाने से राज्य के सारे कार्य ठप पड़ जायेंगे। अतएव राजकीय करों को अवश्य ही चुका देना चाहिये। सबसे महत्वपूर्ण कर्तव्य हमारा यह है कि हम अपने अधिकारों का सदुपयोग करें। इसके दुरुपयोग से न केवल राज्य का वरन् समाज का तथा अपना भी जीवन अव्यवस्थित एवं अशान्तिपूर्ण हो जायगा। मान लीजिये कि आपको अपने घर में रेडियों बजाने का पूर्ण अधिकार है पर जब आपके सभी पड़ोसी सो रहे हों या परीक्षार्थियों की परीक्षा हो रही हो उस समय आप यदि यह कहते हैं कि हम रेडियों बजाने के अधिकार का उपयोग कर सकते हैं तो यह उस का दुरुपयोग है। आप अपने अधिकार का उपयोग करने में वहीं तक स्वतंत्र हैं जहाँ तक आप के इस उपभोग से दूसरे को असुविधा या कष्ट नहीं होता। यदि उससे किसी को असुविधा हुई तो आपका कर्तव्य है कि ऐसे अधिकार को छोड़ दें। यदि हम अपने अधिकारों का सदुपयोग करते हैं तो हमारी स्वतन्त्रता में किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़ सकती। हम अपने जीवन को अत्यन्त सुखी एवं शान्तिमय बना सकते हैं तथा देश की शान्ति एवं उत्कर्ष में सहज्यक हो सकते हैं।



अध्याय ७

आधुनिक भारतीय जीवन की समस्याएँ

(१) सामाजिक सुधार की समस्या—

वैदिक-काल में भारतीय समाज अत्यन्त उन्नत एवं विकासशील था। सारे देश में विद्या का प्रचार था। वेदों में वर्णित आदर्शों के अनुसार समाज का संघटन हुआ था। सारा समाज चार वर्णों में विभक्त था। ब्राह्मण लोग पठन-पाठन तथा बुद्धि एवं मस्तिष्क सम्बन्धी कार्य करते थे। क्षत्रियों पर देश की रक्षा तथा शासन का भार था। वैश्य धन-धान्य एवं व्यापार की उन्नति में रत थे और शूद्र अन्य तीन वर्णों की सेवा करना अपने जीवन का उद्देश्य समझते थे। ये विभाग गुण, कर्म, स्वभाव एवं प्रतिभा के आधार पर किये गये थे। प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता थी कि अपनी व्यक्तिगत योग्यता के अनुसार किसी भी वर्ण में जा सकता था। सभी वर्ण समान माने जाते थे। ऊँच-नीच का भाव न था। स्त्रियों की शिक्षा की व्यवस्था थी। समाज में उनका आदर था। वे यज्ञों में सम्मिलित होतीं तथा शास्त्रार्थ में भी भाग ले सकती थीं। गृहस्थी रूपी गाड़ी की दो पहियों के रूप में स्त्री-पुरुष सहयोग एवं समान अधिकारों से कार्य करते थे। धन-धान्य की प्रचुरता थी। धन का असमान-विभाजन न था कि एक व्यक्ति दिन भर परिश्रम करके भूखों मरे और दूसरा अकर्मण्य रह कर भी जीवन के सुख एवं ऐश्वर्य का उपभोग करें। व्यक्तिगत स्वार्थों को महत्व नहीं दिया जाता था वरन् सारे समाज की उन्नति में अपनी उन्नति मानो जाती थी।

कालान्तर में कर्मणा के स्थान पर जन्मना वर्ण माना जाने लगा। समाज में ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ माने जाने लगे। क्षत्रियों का स्थान उनसे निम्न तथा वैश्यों को क्षत्रियों से नीचा समझा जाने लगा। शूद्र सबसे निकृष्ट समझे गये। केवल इतना ही नहीं बल्कि प्रत्येक वर्ण में अनेक जातियाँ और उपजातियाँ बन गयीं। ये भी एक दूसरे को नीच समझने लगे। समाज में जहाँ प्रेम तथा सहानुभूति का साम्राज्य था वहाँ ईर्ष्या, वैमनस्य तथा विद्वेष का ताण्डवनृत्य होने लगा।

अनेक विदेशी जातियाँ भारत में आयीं। यहाँ की समाजिक फूटने उन्हें यह पनपने तथा शासन करने का अवसर दिया। उनके रीति-रिवाज तथा सामाजिक आदर्शों का प्रभाव हम पर पड़ना अनिवार्य था।^१ इसलिए भारतीय समाज में अनेक दोष आ गये। कुछ लोगों ने ज्ञान का ठेका ले लिया। इससे अन्य वर्ग शिक्षा एवं ज्ञान से दूर होते गये। समाज में अज्ञान का अन्धकार फैल गया। अनेक प्रकार के अन्धविश्वास व्याप्त हुए। विभिन्न मतमतान्तर फैले। यहाँ तक कि मांस-भक्षण तथा मद्य-सेवन को भी धर्म माना गया। धर्म के नाम पर अनेक आडम्बर और ढकोसले फैल गये।

जिन भारतीयों ने सारे संसार में चक्रवर्ती राज्य किया था, वे ही समुद्र-यात्रा को पाप समझने लगे। इससे एक ओर तो विदेशी व्यापार नष्ट हो गया दूसरी ओर विचार भी संकुचित हो गये। समाज के वर्ग वर्ग को ही हमने अस्पृश्य घोषित कर दिया। उन्हें छूना पाप माने जाने लगा। समाज में उनकी दशा पशुओं से भी गरीबी की होती हो गयी। सभी लोग अपने स्वार्थ में लिस हो गये। दूसरे व्यक्ति के जीवन को तुच्छ मानने लगे। बड़े-बड़े जमींदार, धनी तथा पूँजी-बादी व्यक्ति अपने ही धन की वृद्धि में लगे रहे। उन्हें यह स्वप्न में भी ध्यान न आता कि बेचारे मजदूर तथा किसान दिन भर परिश्रम करने के बाद भी भूखों मर रहे हैं।

वैवाहिक कुरीतियाँ समाज को और भी जर्जर बना रही थीं। कहीं बुढ़ो के ब्याह रचाये जाते थे, तो कहीं छोटे-छोटे अबोध बालकों को वैवाहिक-बन्धनों में बाँध कर समाज फूला न समाता था। ऐसे विवाहों के कारण विधवाओं की संख्या बढ़ रही थी। समाज में व्यभिचार तथा अप्रत्याचार फैल रहा था। अनमेल् तथा बाल-विवाह के कारण शिशुओं तथा स्त्रियों की मृत्यु संख्या बढ़ रही थी। स्त्रियों की दशा अत्यन्त हीन हो गयी थी। उनकी शिक्षा-दीक्षा का तो नाम न रह गया था। समाज 'स्त्री-शूद्रौ ना धीक्षताम्' का नारा लगा रहा था कि स्त्री और शूद्र में तो बुद्धि ही नहीं है। स्त्रियाँ विलास-की सामग्री समझी जाने लगीं। यही नहीं कुछ लोग तो उन्हें पैर की जूती समझने लगे। देश में विदेशियों का राज्य था। उन्हें इस ओर ध्यान देने का अवसर कहाँ? वे तो अपने स्वार्थ-साधन में लिस थे। बौद्ध तथा जैन धर्मों ने धार्मिक आन्दोलन के साथ-साथ

कुछ सामाजिक बुराइयों की ओर भी ध्यान दिलाया पर उन्हें कुछ विशेष सफलता नहीं मिली ।

१४ वीं शताब्दी में स्वामी रामानन्द जी तथा उनके शिष्यों ने ऊँच-नीच के भाव का विरोध किया । उन्होंने 'हरि को भजै सो हरि का होई' का स्पष्ट एवं सबल समर्थन किया । १९ वीं शताब्दी में श्री राजाराम मोहनराय ने सामाजिक कुरीतियों को दूर कर समाज सुधार करने का प्रयत्न किया । बङ्गाल में ब्रह्म-समाज की स्थापना करके इन्होंने समाज सुधार का कार्य किया । इसी समय स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 'समाज-सुधार का व्यापक आन्दोलन चलाने के लिए सन् १८७५ में आर्य समाज की स्थापना की । महर्षि दयानन्द ने ब्रिष्यों की शोचनीय दशा की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया । उन्होंने 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' का समर्थन किया । बालकों की भौति बालिकाओं की शिक्षा के लिए कन्या गुरुकुल खोलने की प्रेरणा दी । बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह तथा अनमेल विवाहों का विरोध किया । साथ ही विधवाओं के विवाह के लिए भी आन्दोलन चलाया । अछूतों के प्रति पूर्ण सहानुभूति प्रदर्शित की । अस्पृश्यता को दूर करने का प्रबल प्रयत्न किया । अनेक अन्धविश्वासों तथा आडम्बरों का खण्डन किया । इससे समाज की आँखें खुल गयीं । समाज में एक नयी चेतना आयी । इसके अनन्तर लाला लाजपतराय स्वामी श्रद्धानन्द पं० मदन मोहन मालवीय तथा महात्मा गांधी ने समाज-सुधार का आन्दोलन चलाया । उक्त महापुरुषों को इसमें सफलता भी मिली । पर भारत ऐसे विशाल देश के समाज-सुधार के लिए बहुत बड़े प्रयत्न की आवश्यकता है । अशिक्षा एवं अन्धविश्वास के कारण उक्त दोष अभी निर्मूल नहीं हुए हैं । यद्यपि आज का समाज पहले की अपेक्षा सुधरा हुआ कहा जा सकता है पर जितना सुधार इतने समय में होना चाहिये था वह नहीं हो सका है । यहाँ हम मुख्य सामाजिक दोषों का संक्षेप में वर्णन करते हैं । हमें इन्हें दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये ।

अस्पृश्यता की समस्या—

हिन्दू समाज ने अपने एक अंगको ही अस्पृश्य मान लिया था । चार बर्गों

में से शूद्र लोगों को छूना पाप समझा जाता था। ये लोग न तो सार्वजनिक कुएँ से पानी भर सकते थे और न सार्वजनिक स्थानों का उपभोग कर सकते थे।^{१२} यहाँ तक कि कुछ स्थानों पर सड़कों पर चलना भी दुर्लभ हो गया था। वे सर्वण हिन्दुओं के सामने खाट पर नहीं बैठ पाते थे। वे सवारी गाड़ियों तथा पालकियों पर सवार न होने पाते थे। सबसे आश्चर्य की बात तो यह थी कि जब तक ये हिन्दू धर्म में रहते थे तब तक तो उनके साथ इस प्रकार के घृणित व्यवहार होते थे पर जब वे विधर्मी हो जाते थे तब उनके साथ समानता का व्यवहार होता था। इसलिए बहुत से अस्पृश्य विधर्मी हो गये। मध्यकालीन सन्तों एवं भक्तों ने इस भेद-भाव को दूर करने का प्रयास किया। महर्षि दयानन्द ने सर्व-प्रथम अछूतोंद्वारा का नारा लगाया। उन्होंने समाज में सब की समानता स्थापित की। इसके अनन्तर अनेक नेता जैसे स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपत-राय, पं० मदनमोहन मालवीय तथा महात्मा गांधी ने व्यापक आन्दोलन किया। महात्मा गांधी ने उन्हें 'हरिजन' नाम से पुकारा। कभी-कभी वे स्वयं इनकी बस्तियों में जा कर रहते थे।

सन् १९३७ में जब उत्तर प्रदेश में कांग्रेस सरकार स्थापित हुई तो उसने हरिजन-सुधार का काम आगे बढ़ाया। उस समय दो विशेष आज्ञाएँ निकाली गयीं। पहिली यह कि हरिजन राज्य में सब कुएँ का प्रयोग कर सकते हैं, दूसरी यह थी कि उनसे बेगार नहीं ली जा सकती। पर कांग्रेस सरकार के पद-त्याग के कारण ये आज्ञाएँ कार्यरूप में परिणत न हो सकीं।

सामाजिक अयोग्यता निवारक कानून—

सन् १९४७ में इस कानून के द्वारा वे सब कठिनाइयाँ दूर हो गयीं जो अभी तक हरिजनों के मार्ग में थीं। इसके अनुसार हरिजनों को प्रत्येक कुआँ, नदी, झरना, सड़क आदि प्रयोग करने का अधिकार है। वे अब सभी अस्पताल, जलपान-गृह, मनोविनोदालय तथा मन्दिरों में बे-रोक-टोक जा सकते हैं। वे अपनी इच्छानुसार किसी सवारी पर चल सकते हैं। उन्हें कोई भी सरकारी नौकरी मिल सकती है। समाज में अब उनका वही स्थान है जो अन्य वर्गों या जाति वालों का है। कोई व्यक्ति उनसे घृणा नहीं कर सकता और न तो उनका

अपमान कर सकता है। ऐसा करने वाले व्यक्तियों को राजदण्ड मिल सकता है।

प्रदेशीय सरकार ने उनकी सहायता के लिए हरिजन सहायक विभाग स्थापित किया है। यह विभाग उनके सुधार तथा उन्नति का कार्य करता है उनकी कुरीतियों को दूर करना भी इस विभाग का कर्तव्य है।

अनेक जिलों में जिला-समितियाँ स्थापित की गयी हैं जो हरिजन सुधार तथा सुधार का कार्य करती हैं। इसके अतिरिक्त प्रदेश भर के हरिजनों सुधार एवं उन्नति के कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए एक प्रादेशिक हरिजन बोर्ड राजधानी में स्थापित है। हरिजनों की शोचनीय दशा अशिक्षा कारण है। इसलिए उनके उद्धार के लिए शिक्षा की व्यवस्था तथा सुविधा की विशेष आवश्यकता है। हरिजन छात्रों का शुल्क सरकार द्वारा क्षमा किया जाता है। इसके अतिरिक्त उन्हें छात्रवृत्तियाँ एवं सामयिक आर्थिक सहायता भी दी जाती है। साधारण शिक्षा के अतिरिक्त उनके लिए व्यावसायिक शिक्षा की भी व्यवस्था की गयी है।

शासन में उनके लिए स्थान सुरक्षित हैं। वे निश्चित संख्या में स्थानीय शासन-संस्थाओं, प्रान्तीय धारासभाओं तथा केन्द्रीय धारासभाओं में स्थान प्राप्त कर सकते हैं। सरकारी नौकरियों में भी उनके लिए स्थान सुरक्षित है। इस प्रकार सरकार का प्रयत्न है कि अस्पृश्यता का दोष जल्द से दूर हो जाय।

आशा है कि शीघ्र ही समाज का यह कलङ्क दूर हो जायगा। पर इसके लिए हमारे हरिजन भाइयों को भी प्रयत्नशील होना चाहिये। उनके कर्तव्य है कि वे मांस, मदिरा, निरुद्ध भोजनादि का त्याग कर दें। सरकार दी गयी सुविधाओं से लाभ उठाकर शिक्षित बनें। स्वच्छता से रहें तथा अशुद्ध वर्ग के भाइयों को उन्नत बनाने का प्रयास करें।

आधुनिक भारत में स्त्रियों का स्थान—

स्त्री अर्द्धांगिनी मानी जाती है। इसलिए समाज में इनका महत्त्व कम स्थापित है। १९ वीं शती के पूर्वार्द्ध तक इनकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय थी।

हम पहले कह चुके हैं कि स्त्रियों की दिशा सुधारने का प्रयत्न अनेक सुधारकों ने किया। पर अभी तक इनकी अवस्था सन्तोषजनक नहीं हुई है। सर्वप्रथम तो स्त्री वर्ग को समानता का अधिकार नहीं है। वह घर में दासी की भाँति जीवन व्यतीत करती है। यद्यपि सुधार आन्दोलनों के कारण अनेक कन्या-पाठशालाएँ खुल गयी हैं। फिर भी अधिकांश बालिकाएँ अशिक्षित हैं। हमारी शिक्षा का पाठ्यक्रम भी उपयुक्त नहीं है। जब आज की शिक्षा प्रणाली बालकों के लिए भी हितकर नहीं सिद्ध हो रही है तो कन्याओं का तो कहना ही क्या है। उनके लिए भारतीय आदर्शों के अनुसार उपयुक्त पाठ्यक्रम तैयार होना चाहिये जिससे वे आदर्श गृहिणी बन सकें। उनके लिए ललित-कलाओं तथा गृहविज्ञान की शिक्षा की व्यवस्था होना चाहिये। यह तभी सम्भव है जब समाज के मनोभाव बदले जाँय। वह पुत्र और पुत्री को समान महत्व दे। आज तो पुत्री के जन्म से माता-पिता के मुँह पर उदासी छा जाती है। वे पुत्री को पाप समझते हैं। इसके लिए हम उन्हीं को दोषी नहीं मान सकते वरन् इसका बहुत कुछ उत्तरदायित्व समाज पर है।

समाज में विवाह-सम्बन्धी अनेक कुरीतियाँ फैली हैं। वर पक्ष के लोग पुत्र को 'धनादेश' समझते हैं। उनका विश्वास है कि इस धनादेश से हम कन्या-पक्ष से जितना चाहें धन प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए वे अधिक से अधिक तिलक या दहेज रूप में धन प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं। कन्या का पिता विवश होता है। उसे अपनी जायदाद बँचकर तथा ऋण भी लेकर वरपक्ष की माँग पूरी करनी पड़ती है। इस प्रकार कन्या के पिता का सारा जीवन ऋण को चुकाने और अपने पुत्रों के लिए भरण-पोषण की व्यवस्था में चला जाता है। वह जीवन का कोई भी सुख नहीं प्राप्त कर पाता। यदि वह निर्धन हुआ तो और भी अधिक विपत्ति का शिकार होता है। इन कठिनाइयों से ऊँचकर वह आत्महत्या तक कर डालता है। कभी कभी कन्याएँ अपने अभिभावकों के कष्ट का अनुभव कर मृत्यु का आलिङ्गन कर लेती हैं। उधर वर-पक्ष भी उस धन का सदुपयोग नहीं कर पाता क्योंकि मुफ्त का धन व्यय करने में वह विवेक से काम नहीं लेता।

इस प्रथा के कारण प्रायः वृद्ध-विवाह या अनमेल-विवाह होते हैं। विवाहित प्राणी जीवन का आनन्द नहीं भोग पाते। इससे विधवाओं की संख्या में वृद्धि होती है।

पहले तो समाज में बाल-विवाह की प्रथा प्रचलित थी। छोटे छोटे अवस्था बालकों के व्याह रचाकर अभिभावक प्रसन्न होते थे। पर विवाहित बालकों की उन्नति रुक जाती थी। वे असमय में ही रोग-ग्रस्त हो जाते तथा काल के काल गाल में पहुँच जाते थे। इससे भी विधवाओं की संख्या बढ़ती थी। प्रसन्न की बात है कि शारदा-एकट के बन जाने से इस कुप्रथा में कमी हुई है पर अब इसका अस्तित्व नष्ट नहीं हुआ है।

समाज में विधवाओं की अवस्था अत्यन्त शोचनीय है। उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया जाता। कहीं कहीं तो उनका मुख देखना भी पाप समझा जाता है। किसी भी शुभ कार्य में उनको सम्मिलित नहीं करते। आर्य समाज ने इस दिशा में प्रशंसनीय कार्य किया है। सर्वप्रथम इसने ही विधवा-विवाह का प्रचार किया। हर्ष का विषय है कि आज शिक्षित समाज ऐसे विवाह का समर्थन कर रहा है। हमारा कर्तव्य है कि जो विधवाएँ पुनर्विवाह करना चाहें उन्हें इसकी पूरी सुविधा दें। जो ऐसा करना पसन्द न करे उनके लिए विधवा श्रम खोलकर उनके भरण-पोषण तथा शिक्षा का उद्योग करें।

परदा-प्रथा समाज के लिए अहितकर है। पर्दे के अन्दर रहने से स्त्रियाँ शुद्ध वायु तथा उन्मुक्त वातावरण में नहीं आ सकती। इस प्रकार उनका स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। इसलिए स्त्रियों को स्वच्छ जलवायु तथा स्वच्छ वातावरण में रखना चाहिये। उनके लिए उद्यान में टहलने की व्यवस्था हो। पर इसके साथ ही समाज का उत्तरदायित्व भी होता है कि वह ऐसा वातावरण उत्पन्न करें कि महिलाओं पर कोई कुदृष्टि न डाल सके और न तो कोई दुःशिक्षित व्यवहार कर सके। स्त्रियों की दशा सुधारने में विशेष रूप से, श्री राम राममोहनराय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, स्वामी दयानन्द सरस्वती, श्री महादेव गोविन्द रानाडे तथा महात्मा गांधी ने काम किया।

अखिल भारतीय नारी कान्फ्रेंस ने इस क्षेत्र में सहायनीय कार्य किया। कस्तूर-बा फण्ड की ओर से भी स्त्री-समाज सुधार का उत्तम कार्य हो रहा है।

संविधान के द्वारा स्त्रियों को भी मतदान का अधिकार मिल गया है। अब उनके राजनीतिक अधिकार पुरुषों के ही समान हैं। श्रीमती सरोजनी-नायडू हमारे प्रदेश की गवर्नर थीं। इसी प्रकार सुश्री विजयलक्ष्मी पंडित तथा राजकुमारी अमृतकौर भी भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। पर ऐसी महिलाएँ संख्या में कम हैं। आवश्यकता तो इस बात की है कि सभी भारतीय महिलाएँ संविधान द्वारा प्राप्त अधिकारों का उपयोग कर सकें तभी वे सच्ची समानता का लाभ उठा सकेंगी हिन्दूकोडविल द्वारा स्त्रियों को उत्तराधिकार तथा विवाह-विच्छेद का भी अधिकार मिल गया है। इन अधिकारों का उपयोग भारतीय मर्यादा तथा संस्कृति के अनुकूल होना ही वांछनीय है।

भारत में निर्धनता की समस्या—

(१) जन-संख्या में वृद्धि—भारत कृषि प्रधान देश है। यहाँ के खेत छोटे छोटे हैं। इस लिए पृथ्वी का बहुत सा भाग खेतों की ढाँड़ में निकल जाता है। इधर जन-संख्या में बराबर वृद्धि होती जा रही है। इसलिए खेतों पर अधिक दबाव पड़ रहा है।

(२) हमारे कृषक बहुत प्राचीन काल के औजारों द्वारा ही खेती करते हैं। खादों का प्रयोग उचित रीति से नहीं करते। तात्कालिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए गोबर के उपले बना कर बेच देते हैं इससे वे खाद रूप में हमें लाभ नहीं पहुँचा सकते। वैज्ञानिक खादों के मूल्य चुकाना तो उनके लिए बहुत बड़ी समस्या है। अधिकांश कृषक तो इन खादों से ही अनभिज्ञ हैं। जो इसे जानते हैं वे भी धनाभाव के कारण इसके लाभ से वंचित रहते हैं। सिंचाई के साधन न होने से कृषकों को वर्षा पर निर्भर रहना पड़ता है। कभी अति-वृष्टि कभी अनावृष्टि हमें हानि पहुँचाती हैं।

(३) वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में परिश्रम का महत्त्व नहीं है इसलिए श्रम करके अपनी जीविका कमाने में लोग अपमान समझते हैं।

(४) आधुनिक शिक्षा के अभाव के कारण अधिकांश शिक्षित नौकरी

करना अधिक पसन्द करते हैं। सबके लिए नौकरी की व्यवस्था असम्भव है। इसलिए बेकारी बढ़ रही है। अल्पवेतन पर नौकरी करना वे श्रम-पूर्वक यथेष्ट धन कमाने से उत्तम समझते हैं। प्रसन्नता का विषय है कि आज-कल श्रमदान तथा समाज सेवा की व्यवस्था कर युवकों में श्रम के गौरव की महत्ता का भाव भरा जा रहा है। पर अभी इसका प्रदर्शन मात्र ही हो रहा है। सच्चे रूप में श्रम की महत्ता स्थापित करने की आवश्यकता बनी हुई है।

(५) हमारे देश में उद्योग-धन्धों का अभी तक अभाव सा ही रहा है। कुछ मिलें और बड़े बड़े कारखाने हैं पर उनके स्वामी उद्योग की उन्नति की अपेक्षा निजी लाभ का विशेष ध्यान रखते हैं। फलस्वरूप न तो श्रमिकों की कार्य कुशलता बढ़ सकी और न उद्योग की उन्नति ही हो सकी है। जब तक ये पूँजीवादी उद्योगपति स्वार्थ छोड़कर राष्ट्र एवं उद्योग के कल्याण की भावना से कार्य न करेंगे तब तक देश की औद्योगिक उन्नति सम्भव नहीं है। यदि उद्योग-धन्धों का राष्ट्रीय करण हो जाय और सरकार उसकी सुव्यवस्था कर सके तो सर्वाधिक उन्नति सम्भव है।

(६) देश का बहुत सा कच्चा माल विदेश जाता रहा है। उससे उपयोगी सामान बन कर फिर हमारे यहाँ बिकता रहा है। इससे देश का धन विदेश चला जाता है। यदि उद्योग धन्धों की उन्नति हो जाय तो देश का धन यहाँ रह जाय और निर्धनता दूर हो।

(७) विलायती प्रसाधन सामग्री तथा मशीनें विदेशों से मँगायी जाती हैं। इस प्रकार भी हमारा राष्ट्र धन विदेश चला जाता है।

(८) मशीनों के प्रयोग के कारण देश के अधिकांश श्रमिक बेकार हो जाते हैं यदि औद्योगिक उन्नति करके सबको काम दिया जा सके और प्रस्तुत माल देश तथा विदेश के बाजारों में बेजा जाय तो यह निर्धनता दूर हो सकती है।

(९) विवाहादि अवसरों पर प्रचलित सामाजिक कुरीतियों तथा अन्य व्यर्थों के कारण अधिकांश जन अपने धन को पानी की भाँति बहा देते हैं। इस प्रकार वे केवल अपना ही धन नष्ट नहीं करते, वरन् ऋण में भी फँस जाते हैं।

इन कुरीतियों में फँसकर वे अपना धन तथा कार्य-शक्ति नष्ट कर देते हैं। निर्धनता के बढ़ने का यह भी प्रधान कारण है।

(१०) भारतीय दयालुता एवं दान का अनुचित लाभ उठाने के लिए असंख्य अकर्मण्य मनुष्य साधु हो जाते हैं।

ऐसे जन समाज के लिए भार होते हैं : उनकी कार्यशक्ति अकर्मण्य रहती है। केवल उनके द्वारा उत्पादन ही नहीं बन्द होता वरन् वे राष्ट्रीय उत्पादन को विनष्ट करने वाले कीड़े की भाँति धन को नष्ट करते हैं। ये व्यक्ति अपनी धूर्तता से पेट भरते हैं। इनके कारण दया के दान के वास्तविक पात्र लंगड़े-खूले, अन्धे और असहाय अपाहिज मनुष्य सहायता पाने से वंचित रह जाते हैं। देश के ये भिखारी हमारे लिए अभिशाप हैं। हर्ष की बात है कि सरकार ने इस ओर ध्यान दिया है। कुछ राज्यों में तो भीख माँगना अपराध मान लिया गया है। पर असहाय व्यक्तियों के लिए राष्ट्र की ओर से समुचित व्यवस्था होनी चाहिये।

हमारे पूज्य नेता महात्मा गांधी ने इसी दुर्दशा से छुड़ाने के लिए रचनात्मक कार्यों पर अधिक बल दिया था। वे स्वयं चर्खा कातते थे तथा अन्य लोगों को भी इसके लिए प्रोत्साहित करते थे। खेद है कि देश ने उनकी विचार-धारा को नहीं अपनाया। आज भी हम उनके पद-चिह्नों पर चलकर राष्ट्रोत्थान के कार्य को आगे बढ़ा सकते हैं।

हमारे रहन-सहन का स्तर बहुत ही नीचा है। हमारे शिशुओं तथा बालकों के लिए उचित भोजन को कौन कहे साधारण भोजन भी नहीं मिलता। कितने व्यक्ति धनाभाव के कारण रोगों के शिकार हो जाते हैं और अकाल में ही काल के मुख में पड़ते हैं। हमें अपनी कुरीतियों को छोड़ कर व्यावसायिक एवं औद्योगिक उन्नति करनी चाहिये। जिससे देश सुखी एवं सम्पन्न हो।

(५) ग्रामीण उद्योग धन्धों का पुनरुज्जीवन—

हमारा भारत प्राचीन काल से ही उद्योग-धन्धों में अत्यन्त कुशल रहा है। हिन्दूकाल में ये अपनी उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच चुके थे। मुस्लिम काल के उत्तरार्ध में भी ऐसे कुशल कारीगर थे जो बांस की नलिका में रखने योग्य मलमल का थान बुनते थे। ढाके की मलमल तथा अन्य रेशमी वस्त्र

विदेशों में भेजे जाते थे। पूर ब्रिटिश शासन में ऐसे कारीगरों के अँगूठे काट लिये गये। ग्रामीण उद्योग-धन्धों को नष्ट करने के सभी प्रयत्न हुए। जिसका फल यह हुआ कि देश का उद्योग निर्मूल हो गया। अब इस ओर ध्यान गया है। देश को स्वावलम्बी बनने के लिए इन उद्योग-धन्धों की उन्नति आवश्यक है।

भारत कृषि-प्रधान देश है। यदि श्री सोहनलाल द्विवेदी के शब्दों में कहें 'है अपना भारतवर्ष कहाँ वह घसा हमारे गाँवों में' तो कोई अत्युक्ति न होगी। ग्रामीण जीवन के लिए ये उद्योग अत्यन्त आवश्यक हैं। सर्वप्रथम तो हमारे किसान वर्ष के कई महीने कृषिकार्य से मुक्त रहते हैं। इस समय को वे आलस्य में व्यतीत करते हैं। यदि इस समय के वे उद्योग-धन्धों में लगावे तो ग्राम-स्वावलम्बी हो सकते हैं। उन्हें आवश्यक वस्तुओं के लिए दूसरों पर निर्भर न होना पड़ेगा, साथ ही उन की आर्थिक दशा में भी सुधार होगा।

ग्रामीण उद्योग धन्धों में मुख्य ये हैं—

- (१) कपड़ा बुनना। (२) टोकरी बनाना। (३) कम्बल बुनना।
- (४) रस्सी बनाना। (५) लोहारी का काम। (६) बड़ईगिरी।
- (७) चमड़े कमाना। (८) पशुपालना। (९) पक्षी पालना।
- (१०) रेशम के कीड़े पालना। (११) तेल पेरना। (१२) ईख से गुड़ तैयार करना। (१३) मिट्टी के बरतन बनाना।

सरकार का कर्तव्य है कि वह इन धन्धों को संरक्षण प्रदान करे। कारीगरों को आर्थिक सहायता दे तथा उनके द्वारा प्रस्तुत माल की बिक्री का प्रबन्ध करे। सरकार खादी को प्रोत्साहन देने के लिए खहर बुनने वाले कारखानों को आर्थिक सहायता दे रही है। ग्राहकों को भी प्रति रुपया कुछ कमीशन मिलता है। इससे जनता खादी की ओर आकर्षित हो रही है। ग्राम उद्योगों द्वारा प्रस्तुत माल को सरकारी कार्यालयों में खपाया जाय। ऐसे मालों को सीधे ग्राहकों के पास पहुँचाने की व्यवस्था होनी चाहिए जिससे बीच के मुनाफाखोरों से उनकी रक्षा हो सके। राज्य की ओर से इनके लिए ऋण की व्यवस्था होनी चाहिये। सहकारी समितियों को स्थापित कर उनकी कठिनाइयों को दूर करना चाहिये तथा उन्हें आर्थिक एवं अन्य प्रकार की सहायता देनी चाहिये। कमी-कमी

सरकार ऐसी प्रस्तुत वस्तुओं की प्रदर्शनी की व्यवस्था करे जिससे जनता का ध्यान इन वस्तुओं के उपभोग की ओर जाय । जनता में इस प्रकार की भावना भरना परमावश्यक है । इन वस्तुओं का प्रचार हिंदेशों में भी करना चाहिये । इस प्रकार हम ग्रामीण उद्योग-धन्धों को पुनर्जीवित एवं सम्पन्न कर सकते हैं । सौभाग्य का विषय है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारी राष्ट्रीय सरकार इस ओर यथेष्ट ध्यान देती है । हमारे उत्तर-प्रदेश की सरकार ने अनेक योजनाएँ बनायी हैं जो कार्यान्वित भी की जा रही हैं । अभी लखनऊ के टेविनकल स्कूल में उद्योग प्रदर्शनी का आयोजन हुआ था । जिसे देखने से स्पष्ट सिद्ध होता है कि इस थोड़े से समय में देश ने वास्तव में इस क्षेत्र में यथेष्ट उन्नति की है ।

अध्याय ८

विद्यार्थियों का ग्राम तथा नगर निवासियों के प्रति कर्तव्य—

विद्यार्थी-अवस्था मानव जीवन का सबसे महत्वपूर्ण भाग है । यह अवस्था जीवन के निर्माण का समय है । इस अवस्था के विचार और भावनाएँ मरितक पर अमिट छाप छोड़ती हैं इसलिए यह नागरिकशिक्षा का उपयुक्त समय है । यदि इस समय विद्यार्थियों को सिद्धान्त के साथ साथ प्रयोगात्मक शिक्षा दी जाय तो वे उसे अत्यन्त सरलता से ग्रहण कर कार्य रूप में परिणत करेंगे । आगे चल कर वे राष्ट्र के आदर्श नागरिक बनेंगे । वे अपना जीवन सुखमय बना कर देशवासियों के सुख एवं समृद्धि में सहायक होंगे । विद्यार्थियों के जहाँ अनेक कर्तव्य हैं, वहाँ देश की सेवा करना परम पवित्र धर्म है ।

विद्यार्थियों का सर्वप्रथम मुख्यतः शिक्षा से है । इसलिए उन्हें चाहिये कि देश की निरक्षरता का निवारण करें । प्रत्येक छुट्टी में वे दौरा करें और साप्ताहिक अथवा पाक्षिक शिविर लगाकर निरक्षरों को साक्षर करें ।

श्रम-दान कार्य-क्रम में पूर्ण रूप से सहयोग दें । अथवा स्वयं ऐसे कार्यों को करें जिससे समाज में श्रम के प्रति आदर का भाव उत्पन्न हो ।

जनता के स्वास्थ्य की वृद्धि के लिए आरोग्यता के नियमों का प्रचार करें । गन्दे स्थानों की सफाई करके नागरिकों के समक्ष क्रियात्मक उदाहरण रखें ।

इस प्रकार के कार्यों से जनता में स्वच्छता की अभिरुचि उत्पन्न होगी। स्थान स्थान पर व्यायामशालाओं की स्थापना करें तथा दमलादि का आयोजन कर जनता की शारीरिक शक्ति के विकास की आयोजना करें। रोगियों एवं अनाथों की सेवा और रक्षा करके समाज-हितकारी कार्यों में अभिवृद्धि करें।

विद्यार्थी अपना जीवन सादा तथा विचार उच्च रखें। आधुनिक कृत्रिम जीवन से स्वयं घृणा करें तथा जंतुओं को भी उसके चक्कर में न फँसने दें।

उन्हें चाहिये कि वे जनता में राष्ट्रीय भावना को उद्भूत करके सुदृढ़ बनावें जिससे देश का प्रत्येक नागरिक राष्ट्र-हित के कार्यों से प्रेम रखे तथा समय पड़ने पर अपने प्राण की आहुति देकर भी राष्ट्र की रक्षा करें।

उन्हें सरकार की देश-हित की योजनाओं में पूर्ण सहयोग देना चाहिये। केवल स्वयं सहयोग देकर ही सन्तुष्ट न रहना चाहिये वरन् नगर तथा ग्राम निवासियों के हृदय में भी इस प्रकार की जागृति उत्पन्न करनी चाहिये कि वे अपना उत्तरदायित्व समझें तथा अपने कर्तव्य का पालन करें।

अभी हमारे देश में ऐसे लोग हैं जो नागरिकता के अधिकार तथा कर्तव्यों को नहीं समझते। उन्हें मत-दान करना भी अनावश्यक एवं व्यर्थ भार मालूम पड़ता है। विद्यार्थी ऐसे लोगों के विचारों को बदलें जिससे वे राज्य के सञ्चालन में सक्रिय सहयोग दें। वे किसी के दबाव या वहकावे में पड़ कर अपने नागरिक अधिकारों का दुरुपयोग न करें।

अन्त में उन्हें अपने देश की सभ्यता एवं संस्कृति की रक्षा करना चाहिये। उसे अक्षुण्ण बनाये रखने का कार्य विद्यार्थी ही भलीभाँति कर सकते हैं क्योंकि वे बच्चों एवं बालकों के बीच की कड़ी हैं। दोनों ही वर्ग उनके विचारों से प्रभावित हो सकता है।

लोक सेवा की भावना

इस प्रकार विद्यार्थियों को लोक सेवा की भावना अपने हृदय में उत्पन्न करनी चाहिये। जिससे 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्' का साक्षात् दर्शन देश में हो सके।

यही नागरिकशास्त्र की वास्तविक शिक्षा है।

शुभ पुस्तकालय

वाराणसी



सामाजिकशास्त्र की रूपरेखा—प्रथम भाग

भारतवर्ष का इतिहास—सचित्र

ले०—श्रीमन्नालाल अभिमन्यु, एम० ए०

इसमें गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज बनारस की प्रथमा परीक्षा में स्वीकृत विषयों पर ही आरम्भ काल से लेकर आधुनिक काल तक का इतिहास लिखा गया है। पुस्तक अत्यन्त प्राक्तल भाषा और रोचक शैली में लिखी गयी है। इस पुस्तक के अध्ययन कर लेने के अनन्तर परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाना अत्यन्त सरल हो गया है। ५०० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल ३) रखा गया है।

सामाजिकशास्त्र की रूपरेखा—द्वितीय भाग

भारत का भूगोल

ले०—प्राध्यापक श्री मोहनराम यादव, एम० ए०, 'साहित्यरत्न'

इसमें गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज बनारस की प्रथमा परीक्षा में स्वीकृत विषयों के अनुसार भारत का भूगोल लिखा गया है। यह पुस्तक विद्यार्थियों के दृष्टिकोण से लिखी गयी है अतः इसके पठन-पाठन से परीक्षार्थियों को उत्तम निश्चित है। इसमें सामाजिकशास्त्र के प्रश्न-पत्र भी दे दिये गये हैं।

सामाजिकशास्त्र की रूपरेखा—तृतीय भाग

भारतीय नागरिकशास्त्र

ले०—प्राध्यापक श्री मोहनराम यादव, एम० ए०, 'साहित्यरत्न'

पुस्तक आपके हाथों में है। अतः इसके सम्बन्ध में वर्णन करना प्रासङ्गिक न होगा।

प्राप्तिस्थान—मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स,

संस्कृत बुकडिपो, कचौड़ीगली, बनारस-१

